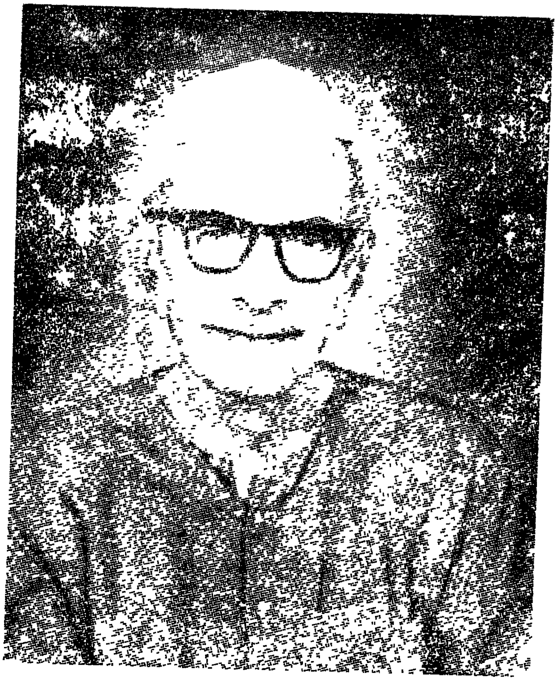
संक्षिप्तवाल्मीकिरामायणे

संस्कर्ता



एतद्ग्रन्थस्य संस्कर्ता सिंहोपाधिविभूषितः ।
श्रीभागवतशर्माऽयं द्योतते वार्धकेऽपि यः ॥

प्रस्तावना

कूजन्तं राम रामेति मधुरं मधुराक्षरम् ।
आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकिकोकिलम् ॥
यः पिबन् सततं रामचरितामृतसागरम् ।
अतृप्तस्तं मुनिं वन्दे प्राचेतसमकल्मषम् ॥
वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे ।
वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षाद् रामायणात्मना ॥

उपर्युक्त वन्दनामन्त्रों से ज्ञात होता है कि इस रामायण के प्रणेता महर्षि प्राचेतस बाल्मीकि हैं। दशरथनन्दन श्रीराम नारायण के अवतार हैं। ब्रह्मस्वरूप श्रीराम के चरित्र का ही वर्णन इस रामायण महाकाव्य ग्रन्थ में है, अतः यह 'वेद' है।

महर्षि वाल्मीकि का परिचय

महर्षि प्राचेतस वाल्मीकि का पूरा परिचय तो पूर्वोद्धृत वन्दना श्लोकों से ही मिल जाता है, फिर भी अपना परिचय उन्होंने उत्तर काण्ड में उद्धृत ९६ वें सर्ग के १९ वें श्लोक में श्रीराम के राजसूय यज्ञस्थली में, सीता के शपथ के पूर्व दिया है, यथा—

प्रचेतसोऽहं दशमः पुत्रो राघवनन्दन ।
न स्मराम्यनृतं वाक्यमिमौ तु तव पुत्रकौ ॥

इसमे भी स्पष्ट हो जाता है कि महर्षि वाल्मीकि प्रचेता (वरुण) के दशवें पुत्र थे। अब उनके अभिजात के सम्बन्ध में किसी प्रकार के संदेह का स्थान तो रह ही नहीं जाता है, क्योंकि उनका अपना दिया हुआ परिचय अकाट्य है। पर अन्यत्र कहीं कहीं उन्हें नीच जाति का बताते हैं। कहीं यह भी आया है कि यह थे तो ब्राह्मण, किन्तु किसी व्याध की संगति से यह हिंसादि अनेक दुर्गुणों से युक्त हो दुराचारी हो गये थे और एकबार सप्तर्षियों के संयोग एवं उपदेश से उन दुर्गुणों से मुक्त हुए और इन्होंने राममन्त्र—'मरा मरा'-जपकर सिद्धि पाकर रामायण की रचना की और अमर कीर्ति पायी। गोस्वामी तुलसीदास की कृतियों में भी इस तरह का वर्णन जहाँ तहाँ आया है, पर कदाचित् यह जन्मान्तर की बात रही होगी। इस सम्बन्ध में विशद विवेचन आगे श्री पं० कृष्णमोहन ठाकुर जी के लेख में किया गया है।

रामायण तथा आदि कवि की महत्ता

कुछ भी हो आदिकाव्य श्रीरामायण की मान्यता समस्त आस्तिक जगत में वेदतुल्य ही है। उसके रचयिता महर्षि वाल्मीकि, विश्व के आदि कवि हैं, अतः सभी परवर्ती कवियों एवं पद्यात्मक ग्रन्थकर्ताओं ने उन्हें गुरु मानकर नमन किया है। रामायण विश्व का आदिकाव्य है। यह मौलिक आदि महाकाव्य भारतीयों की ही नहीं सारे विश्व की अमूल्य गौरवनिधि है, जिसमे सर्वतोमुखी ज्ञान-भण्डार संचित है।

रामायण के सौष्ठव गुण

अनेक विचारकों की सम्मति है कि परवर्ती विद्वानों ने जो काव्यों के पारिभाषिक लक्षणादि लिखे हैं, उनकी आधारशिला रामायणवर्णित लक्षण ही हैं। रामायण के सुन्दरकाण्ड तो यथार्थतः अपने काण्डनाम की सार्थकता एवं अनुरूपता प्रकट करता है। त्र्यम्बकराज मखानी ने तो इस काण्ड के प्रायः सभी श्लोकों को अलंकार एवं रसादियुक्त माना है। यही नहीं, बल्कि 'सुन्दरे किं न सुन्दरम्' की उक्ति वस्तुतः सत्य है। इस काण्ड में भी पाँचवा सर्ग तो समग्र काव्यगुणों से ओतप्रोत, नितान्त सुन्दर उतरा है। ऐसे तो रामायण महासागर के प्रत्येक श्लोक तरङ्ग अपना अपना भिन्न महत्त्व रखता है और भिन्न मूल्य भी।

आश्चर्य तो इस बात की है कि आदि कवि के समय अथवा उसके पूर्व किसी काव्यग्रन्थ का अस्तित्व तो था नहीं, फिर बृहत्काय एवं अद्वितीय महाकाव्य की ऐसी सुन्दर रचना हुई क्योंकर, इसका भी समाधान इस पावन ग्रन्थ से ही हो जाता है। तपोबल से महर्षि ने जगत् कर्ता ब्रह्मा का साक्षात्कार किया, उनसे रामायण को नैसर्गिक काव्यता का प्रसाद पाया और सरस्वती ने स्वयं उनकी सहज भावना को जगाकर उन्हें अपने इष्ट कार्यसम्पादन की प्रेरणा दी। फिर क्या था, सुन्दर कवितास्रोत फूट पड़ा। सन्त कवि की कविता स्वभावतः काव्य के समग्र उपादानों से सम्पन्न रहती है।

प्रकृतिचित्रण तथा संवाद की विलक्षणता

इस महाकाव्य में प्रकृति-चित्रण तो अनुपम है ही संवादभाग भी कुछ कम रुचिकर एवं आकर्षक नही हैं। हनुमान् जी की वाक्पटुता एवं आलाप-कुशलता देखते ही बनती है, चाहे वह श्रीराम लक्ष्मण के साथ हो अथवा लंकास्थित महारानी सीता के साथ, चाहे रावण के समक्ष हो या चाहे भरत के साथ। बोलने की विलक्षण शैली, तर्कयुक्त प्रस्तुतीकरण, वस्तुस्थिति का ज्ञान ये सारे गुण उन्हीं में निहित थे। इसीलिये तो उन्हें, 'बुद्धिमतां वरिष्टम्, कहा जाता है। रावण, विभीषण, भरत, राम आदि के सम्वाद भी अपने अपने ढंग के रोचकतापूर्ण हैं।

सर्वशास्त्र ज्ञान की समन्वितता—

शास्त्र, न्याय, मीमाँसा, धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, गणितशास्त्र, मनोविज्ञान, राजनीति, व्यवहारपरक ज्ञानादि का समावेश इस ग्रन्थ में यथास्थान सुन्दर ढंग से हुआ है।

तपस्या का महत्त्व दर्शन

तपस्या की महत्ता का प्रतिपादन भी जोरदार ढंग से हुआ है। इस ग्रन्थ का आरंभ ही 'तप' शब्द से हुआ है।

"तपः स्वाध्याय निरतं तपस्वी वाग्विदांवरम्।
नारदं परिपप्रच्छ वाल्मीकिर्मुनिपुङ्गवम्" ॥

प्रथम अर्धाली में दो बार 'तप' शब्द का प्रयोग ही इसके महत्त्व को प्रकट करता है। महर्षि की ऐसी अद्भुत कवितारचना तथा अन्यान्य महत्त्वपूर्ण सिद्धियों की प्राप्ति का मूलभूत साधनस्रोत उनकी प्रकाण्ड तपश्चर्या ही थी।

सर्वसिद्धियों का आधार तपस्या

विश्वामित्र जी ने अपनी विचित्र तपस्या द्वारा क्या नहीं किया? यहाँ तक कि उन्होंने अपनी क्रान्तिकारी तपस्या द्वारा ही एक क्षत्रिय राजा से ब्रह्मर्षित्व को प्राप्त कर लिया। तप के प्रभाव से ही तो भगीरथ ने गङ्गा को धराधाम में ला पहुँचाया था न? इसी प्रकार चूली (श्रृङ्गि)ऋषि की तपस्या, गौतम तथा भृगु आदि ऋषियों की तपस्या का वर्णन है। महर्षि वाल्मीकि के मतानुसार स्वर्गादि जितने भी सुख भोग हैं, उनका एकमात्र हेतु तपस्या ही है। किमधिकं रावणादि के राज्य सुख, शक्ति, आयु आदि का मूल भी तप ही है। श्रीराम तो एक विशुद्ध तपस्वी थे ही।

सभी ऋषिगण को श्रीराम के यथार्थ तत्त्व का ज्ञान

श्रीराम दण्डकारण्य में प्रत्येक तपस्वी के आश्रम में जाते हैं, जहाँ वैखानस बालखिल्य, सुतीक्ष्णादि भिन्न भिन्न श्रेणी के तपस्वी विद्यमान थे। वे सब के सब आत्मज्ञानी द्रष्टा थे। जब उनने श्रीराम को आते देखा, तब उनमें नारायण-स्वरूप को तत्त्वतः पहचान लिया। उनके दर्शनमात्र से ही उन्हें अपार आनन्द का अनुभव हुआ। अनुमान से जान पड़ता है कि कदाचित् वे राममन्त्र के ही जापक थे, कारण यह कि इन तपस्वियों में अनेक श्रीराम को देखते ही अपने शरीर को योगाग्नि में त्याग कर देते थे। वस्तुतः ओजस्वी काव्यविधि द्वारा कान्ता एवं मधुर वाणी में महर्षि वाल्मीकि का यही दार्शनिक उपदेश प्रतीत होता है।

उनका मूल-तत्त्व इस प्रकार पवित्रतापूर्वक रह कर तपोऽनुष्ठान द्वारा परब्रह्म की आराधना करना एवं अधर्ममार्ग से सदैव विलग रहना है।

श्रीराम की शरणागतवत्सलता एवं प्रच्छन्न ईश्वरता

आधुनिक विचारधारी कुछ लोग आर्ष काव्य को मानव चरित्र मानते हैं। वे यह भी कहते हैं कि इसमें हजारों श्लोक प्रक्षिप्त हैं, पर यह धारणा उनकी इसलिये है कि उन्होंने ध्यान से अध्ययन का प्रयास नहीं किया है। मनोयोग पूर्वक अध्ययन से श्रीराम की ईश्वरता इस ग्रन्थ में सर्वत्र दीखेगी। गम्भीर अध्येता को तो प्रत्येक श्लोक तथा ईश्वरताप्रतिपादक सामग्रियाँ दृष्टिगोचर होंगी। शरणागत विभीषण श्रीराम की शरण में पहुँचता है। सुग्रीवादि यूथपति उसे शत्रुपक्ष के रावण का भाई समझ, उसे दण्डित करने का परामर्श श्रीराम को देते हैं। श्रीराम ने कान्त भाषा में अपने सहयोगियों से कहते हैं, "जो भी प्राणी मेरी शरण में आयगा, उसकी रक्षा करूंगा, चाहे वह शत्रु हो या मित्र, कोई भी हो। यदि देव, गन्धर्व, असुर, नागादि सभी भूत जुटकर मेरे विरोध में आ खड़े हों तो उन सबों को नष्ट कर दूंगा"। यह है श्रीराम की शरणागत वत्सलता एवं ईश्वरता प्रच्छन्न ही सही। इसीपर सुग्रीव ने कह ही तो दिया—

"किमत्र चित्रं धर्मज्ञ ! लोकनाथ ! शिखामणे ! ।
यत् त्वमार्य ! प्रभाषेथाः सत्त्ववान् सत्पथे स्थितः" ॥लं० १८,२६

हनुमान् की अनन्यता एवं श्रीराम में ईश्वर का बोध—

आत्मज्ञानी एवं तत्त्वदर्शी हनुमान् जी ने रावण के समक्ष श्रीराम के गुणों का जो विशदवर्णन किया था, उनमें श्रीराम को ईश्वर तो नहीं बताया, किन्तु उनके गुणों का वर्णन जैसा उन्होंने किया वे ईश्वर में ही पाये जाते हैं। उन्होंने उससे कहा था—'रावण ! श्रीराम में वह शक्ति है कि वह एक ही क्षण में समग्र चराचरात्मक जगत् को संहृत कर दूसरे ही क्षण फिर उसे उसी रूप में सृजन कर सकते हैं—

"सत्यं राक्षसराजेन्द्र ! शृणु त्वं वचनं मम ।
रामदासस्य दासस्य वानरस्य विशेषतः ॥
सर्वाल्लोकान् सुसंहृत्य सभूतान् सचराचरान् ।
पुनरेव तथा स्रष्टुं शक्तो रामो महायशाः" ॥

श्रीराम का मानवरूप में चरित्र चित्रण—

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम का चरित्रचित्रण सो अवश्य ही मानवरूपमें किया गया है किन्तु, वास्तवमें वाल्मीकि जैसे आत्मवेत्ता तपस्वी के लिये जो वन के कन्दमूल खाकर सतत स्वाध्याय एवं आत्मचिन्तन में तल्लीन रहने वाले थे, भला

उन्हें किसी प्राकृतिक पुरुष के चरित्रचित्रण की क्या अपेक्षा हो सकती थी ? वह वस्तुतः श्रीराम के तात्त्विक रूप के ज्ञाता थे और इसीलिये वे श्रीरामायण के अतिरिक्त एक अन्य विशालकाय ग्रन्थ योग-वासिष्ठ' भी रच डाला। महर्षि राममन्त्र के के ही जापक थे। इसीसे उन्हें सारी सिद्धियाँ मिली थीं।

हनुमान् का रामायण में विशिष्ट स्थान

रामायण में पवनात्मज हनुमान् का प्रमुख स्थान है। उनकी तर्कना शक्ति एवं वाक्पटुता अद्वितीय थी, जिसकी प्रशंसा श्रीराम ने स्वयं श्रीमुख से की है। जो काम किसी से होनेवाला नहीं होता था, उन्हें हनुमान् ही कर डालते थे। मेघनाद के बाणों से श्रीरामादिसहित करोड़ों सैनिक वीरों के आहत होने पर जाम्बवन्त के कहने पर रातोरात शल्यचिकित्सोपयोगी औषधि को हिमालय जाकर ले आना केवल हनुमान् से ही साध्य हुआ। सौ योजन समुद्र पार कर सीता का पता लगाकर श्रीराम को संदेश सुनाना हनुमान् के अतिरिक्त किससे हो सकता था ? दौत्यकर्म का सफल सम्पादन जैसा हनुमान् ने किया वैसा किसी अन्य से सम्भव नहीं था। रावण युद्ध विजय के बाद सीता को संवाद सुनाते समय देवी ने प्रसन्न होकर हनुमान् से कहा था—

"बलं शौर्यं श्रुतं सत्त्वं विक्रमो दाक्ष्यमुत्तमम् ।
तेजः क्षमा धृतिः स्थैर्यं विनीतत्वं न संशयः" ॥
एते चान्ये च बहवो गुणास्त्वय्येव शोभनाः ।

इसी तरह श्रीरामने अपने राज्याभिषेकोपरान्त उन्हें विदा करते समय हनुमान् के प्रति कृतज्ञता व्यक्त की थी, यथा—

एकैकस्योपकारस्य प्राणान् दास्यामि ते कपे !।
शेषस्यैवोपकाराणां भवाम ऋणिनो वयम् ॥
मदङ्गे जीर्णतां यातु यत् त्वयोपकृतं कपे ! ।
नरः प्रत्युपकारणमापत्स्वायाति पात्रताम् ॥(उ० ४०-२३-२४)

रामायण कविता-कुञ्ज में विहार करनेवालों में स्वयं महर्षि एवं पवनकुमार प्रमुख रहे हैं। इसीलिए गोस्वामी तुलसीदास ने वन्दना श्लोक में लिखा है—

सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ ।
वन्दे विशुद्ध-विज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ ॥

हनुमान के विषय में जितना भी लिखा जाय थोडा है।

श्रीराम में नारायणरूप का स्पष्ट संकेत

(१) ब्रह्मादि सभी देवताओं ने, क्रूर रावण के अत्याचार से पीडित हो उसके बध के लिये विष्णु को राजा दशरथ के पुत्रत्व ग्रहण करने की प्रार्थना की

और विष्णु ने अपनी स्वीकृति दे दी। (२) अहल्या का उद्धार। (३) शरभङ्गा-श्रम में इन्द्र एवं शरभङ्ग संवाद। (४) विराध एवं कबन्ध की उक्तियाँ। (५) शबरी एवं अन्यान्य तपस्वियों के श्रीराम के प्रति व्यवहार। (६) हनुमान् की श्रीराम में निःस्वार्थ अनन्यता। (७) शम्बूक वधोपरान्त अगस्त्यमुनि की भक्ति और अभिव्यक्ति। (८) स्वयं ब्रह्मा जी का श्रीरामस्वरूप का तात्त्विक वर्णन, (९) तथा महाप्रयाण काल की घटना। इनके अतिरिक्त अनेक स्थलों पर यत्र तत्र, उनके ईश्वरत्व का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष आभास मिलता ही है।

नारियाँ—

सीता तो आदर्श नारी थीं ही, उनके अतिरिक्त और नारियों का चरित्र-चित्रण इस महाकाव्य में किया गया है, जिन में भिन्न भिन्न प्रकृति के भिन्न भिन्न सद्गुण संनिविष्ट थे। हाँ, जहाँ तक पातिव्रत्य का प्रश्न है, यह गुण उस समय न्यूनाधिक सबोंमें था। नारियाँ मृदुभाषिणी धर्मपरायणा एवं कार्यकुशल थीं। उनमें कतिपय उच्चकोटि की विदुषी एवं कालज्ञा भी थीं जिन्हें देश, काल, परिस्थितियों का पूरा ज्ञान था। किन्तु कुछ नारियाँ ऐसी भी थीं, जो यथार्थसिद्धि एवं जघन्यकर्म के लिये उतारू हो जाती थीं। वानर तथा राक्षस जाति में भी अनेक नारियाँ विचारशीला पायी जाती थीं।

राजतन्त्र में गणतन्त्र का ही प्रयोग

शासन-पद्धति यद्यपि राजतन्त्र थी, तथापि किसी महत्त्वपूर्ण कार्य के प्रारम्भ करते समय सभी वर्ग के विशिष्ट लोगों को आमन्त्रित कर उनकी सलाह ली जाती थी और उसका सम्मान किया जाता था। यद्यपि रावण आसुरी प्रकृति का था किन्तु उसकी विद्वत्ता, एवं नीतिज्ञता किन्हीं से कम न थी, पर वह भी महत्वपूर्ण कार्यारम्भ के समय मन्त्रियों एवं जनता की राय लेता था। राजा दशरथ एवं श्री राम तो प्रत्येक काम में जनता की इच्छा को सर्वोपरि मानते ही थे। श्रीराम ने तो एक साधारण गवाँर व्यक्ति के मिथ्यापवाद के कारण ही अग्नि-परीक्षित सती साध्वी सीता को गर्भावस्था में भी परित्याग कर दिया था। लंका में भी युद्ध-विषयक प्रत्येक काल में विशेषज्ञों का परामर्श लेकर ही वे कार्यारम्भ करते थे, एवं श्रीराम जनमत के पोषक और शुभेच्छुक थे।

मित्रवत्सलता

सुग्रीव से जब मित्रता हो गई और वालिवध के बाद उसे किष्किन्धा का राजसिंहासनासीन करा उसकी पत्नी रुमा को भी दिलाई तब वह बहुत प्रसन्न हुआ। उस सुग्रीव ने बरसात बीतने पर सीता की खोज कराने की प्रतिज्ञा की थी। कुछ देर हो जाने के कारण श्रीराम को उस पर थोड़ा क्रोध हो आया। उन्हें ऐसा देख लक्ष्मण ने सुग्रीव को वध ही करने का निश्चय किया। शीघ्र ही

श्रीराम ने अपने प्यारे भक्त भाई को ऐसा करने से रोका और कहा—तात! जिससे मित्रता हो गई, उसे निर्वाह होना चाहिये। उसे समझा देना—कार्य स्मरण करा देना, बस। श्रीराम सुग्रीव को अपने भाइयों में से पाँचवाँ भाई का स्थान दिया था और उसे जीवनपर्यन्त निवाहा। यही बात विभीषण के प्रति भी थी। एक बार सुग्रीव ने कहा था कि जब विभीषण भाई का नहीं हुआ तब हम लोगों का कब होगा ? उस पर श्रीराम ने उससे कहा—

न सर्वे भ्रातरस्तात! भवन्ति भरतोपमाः।
मद्विधा नो पितुः पुत्राः सुहृदो वा भवद्विधाः॥

भ्रातृवत्सलता

भ्रातृ-वत्सलता तो उनमें कूट कूट कर भरी ही थी। श्री रामने जब चित्रकूट में भरत की सेना देख कर लक्ष्मण को कुपित होते देखा और भरत से जूझने की उनकी इच्छा देखी, तब उनसे कहा—'जब स्वेच्छा से राज्य त्याग ही दिया तब अनुचित हिंसा की क्या आवश्यकता ? कदाचित् भरत हम से मिलने आया हो मैं तो राज्य भी अपने भाइयो के सुख के लिये ही चाहता हूँ', यथा—

नेयं मम मही सौम्य! दुर्लभा सागरम्बरा।
नहीच्छेयमधर्मेण शक्रत्वमपि लक्ष्मण!॥
यद् विना भरतं त्वां च शत्रुघ्नं वापि मानद!।
भवेन्मम सुखं किञ्चिद् भस्म तत् कुरुतां शिखि॥अ० ९७-७८॥

भरत की उदारता लक्ष्मण की राम में अनन्यता

दबाव में ही आकर सही, पिता ने भरत को राज्य तो दे ही दिया था। गुरु-जनों ने भरत को अभिषेक करालेने का आग्रह किया, यहाँ तक कि माता कौसल्या और गुरुवसिष्ठ ने भी; किन्तु उदारचेता भरत ने किसी की एक भी न सुनी, उन्होने अपने वंश-परम्परा का अनुसरण करते हुए श्रीराम को ही राजा माना और उन्हें मना कर लाने के लिये बन को प्रस्थान किया। वहाँ पहुँच श्रीराम से सविनय प्राथना की कि वह राज्य ग्रहण करें और उनके बदले वह (भरत) चौदह वर्ष वन-वास करेंगे। श्रीराम ने जब दृढता से उनके प्रस्ताव को अस्वीकार किया तब भरत उनके चरणपादुका को ही उनका प्रतिनिधिस्वरूप लेते आये। श्रीराम के अयोध्या लौटने तक भरत ने नन्दिग्राम में तापस जीवन बिताते हुए श्रीराम की पादुका की ही आज्ञा से राज्य चलाया।

लक्ष्मण स्वभावतः श्रीराम के अनुगामी थे, कभी भी उनका साथ नहीं छोड़ा। वनगमन के पूर्व उन्होंने कौसल्या के विरह देख क्रोधाभिभूत हो यहाँ तक कह डाला था कि—

हनिष्ये पितरं वृद्धं कैकेय्यासक्तमानसम् ।
कृपणं च स्थितं बाल्ये वृद्धभावेन गर्हितम् ॥ अ० २१-१९ ॥
अहं तावन्महाराजे पितृत्वं नोपलक्षये ।
भ्राता भर्ता च बन्धुश्च पिता च मम राघवः ॥ अ० ५८-३१ ॥

लक्ष्मण की हितैषिता से प्रभावित हो राम ने कहा था—

भावज्ञेन कृतज्ञेन धर्मज्ञेन च लक्ष्मण ! ।
त्वया पुत्रेण धर्मात्मा न संवृत्तः पिता मम ॥ अ० १५-२९ ॥

प्यारे लक्ष्मण ! तू मेरे मन के भाव को तत्काल समझ लेने वाले कृतज्ञ एवं धर्मज्ञ हो, तुझ जैसे पुत्र के कारण मेरे धर्मात्मा पिता अभी मरे नहीं हैं, तेरे रूप में वे अब भी जीवित ही हैं ।

मित्र-सुग्रीव और विभीषण में अन्तर—

सुग्रीव और विभीषण दोनों सद्गुणसम्पन्न, नीतिज्ञ, बुद्धिमान और विश्वासी थे । अन्तर केवल यही था कि सुग्रीव पूर्वोपकृत थे और विभीषण परोपकृत, अन्यथा 'को बड़ छोट कहत अपराधू' की ही उक्ति लागू होती है ।

ऐतिहासिक परिवेश—

इस आर्षमहाकाव्य में ऐतिहासिक घटनाओं का भी महत्वपूर्ण विवेचन है । यद्यपि आधुनिक तथा तत्कालीन प्राचीन वर्णन-पद्धति में बहुत अन्तर पाया जाता है । रामायण अतिप्राचीन महाकाव्य ग्रन्थ है, जिसके द्वारा हमें उस काल के अनेक राजवंशों, उनके शासन पद्धतियों एक दूसरे के साथ सम्बन्धों, भिन्न भिन्न प्रकार के तन्त्रों एवं नीतियों का ज्ञान प्राप्त होता है, जिसका सीधा सम्बन्ध इतिहास से है । आज के इतिहास से उसका पूर्णरूपेण मेल ता नहीं खाता, किन्तु तत्कालीन ऐतिहासिक शर्त तो पूरा हो ही जाता हैं, यथा:—

धर्मार्थकाममोक्षाणामुपदेशसमन्वितम् ।
पूर्ववृत्तं कथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते ॥

भौगोलिक ज्ञान—

भूगोल सम्बन्धी ज्ञान-भण्डार की उपलब्धियाँ भी इस आर्षग्रन्थ में प्रचुर हैं । सीतान्वेषण हेतु जाते हुए वानरयूथपतियों को सुग्रीव ने भिन्न भिन्न देशों नदियों. पहाड़ों, समुद्रों, वनस्पतियों, निवासियों तथा जलवायु आदि का ज्ञान दिया था, वह निश्चय ही भूगोल से सम्बन्धित था । उन स्थानों में से अनेकों की सत्यता प्रकट हो चुकी है और कतिपय का अब भी पता लगाया जा रहा है ।

शासन प्रणाली—

तत्कालीन शासन साधारणतः राजतन्त्र था, किन्तु उसे निरङ्कुश नहीं कहा जा सकता । बड़े बड़े ज्ञानी विद्वान् मन्त्री (अमात्य) एवं सचिव नियुक्त किये जाते

थे, जो राजा को राज-सञ्चालन में सत्परामर्श देते थे। इसके साथ ही किसी महत्व पूर्ण समस्या के सामाधान काल में प्रजावर्ग को सम्मति ली जाती थी। प्रजावर्ग के मनोभाव का सम्मान विशेषरूप से किया जाता था। राजा, राजपुत्र, अमात्य, सेनापति आदि को व्यूहरचना का विशिष्टज्ञान रहता था। उस समय भिन्न भिन्न प्रकार के आयुधों का निर्माण हो चुका था, जिनमें आग्नेयास्त्र, वायव्यास्त्रादि भी थे। युद्धकाल में युद्धसम्बन्धी नियमों का परिपालन होता था।

सारांश —

आर्षमहाकाव्य रामायण में सर्वतोमुखी ज्ञान-भण्डार का संचय है। धार्मिक, नैतिक, आर्थिक, सामाजिक, आध्यात्मिक, वैज्ञानिक अथवा कलासम्बन्धी कोई भी ऐसा अङ्ग नहीं है, जिस का इसमें सविस्तर विवेचन न हुआ हो। इससे स्पष्ट हो जाता है कि महर्षि वाल्मीकि अवश्य ही सर्वज्ञता को प्राप्त हो गये थे। इसी से तो उन अमर महात्मा को कीर्ति भी अमर है। शायद इस सभ्य संसार की कोई भी भाषा नहीं है, जिसमें इस सद्ग्रन्थ का अनुवाद नहीं पाया जाता हो और जहाँ के विचारक इस पर गम्भीरता से विचार न करते रहे हों, आज से नहीं, अनन्त काल से।

संक्षिप्त वाल्मीकि-रामायण संकलन

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि इस आर्षमहाकाव्य में सातकाण्ड, पाँचसौ सर्ग और चौवीस सहस्र २४०००श्लोक हैं। इन श्लोकों में से प्रत्येक सूक्तिस्वरूप धार्मिक हैं और प्रत्येक का भिन्न भिन्न महत्व है। उनमें किसी विशेष श्लोक को महत्वपूर्ण अङ्कित कर चयन करना किसी विशेषज्ञ के लिये भी एक प्रगाढ़ समस्या हैं, फिर मुझ जैसे अल्पज्ञ के लिए संकलनात्म कार्य में हाथ डालना तो अवश्य ही हास्यास्पद है। किन्तु अपनी अल्पज्ञता को जानते हुए भी अपनी दुरभिकाङ्क्षा को संवरण नहीं कर सका। अपने लिये दुःसाध्य कार्यमें भी जुटजाने का दुःसाहस कर ही डाला।

कथाभाग की धारा का अवरोध न हो, इसका यत्न भरसक किया गया है और इसी कारण संकलन की थोड़ी कायावृद्धि हो गई हैं। यह कैसा उतरा है, इसको जानने के लिये मैंने पाण्डुलिपि को अपने ग्रामीण साहित्यदर्पण और कादम्बरी के प्रसिद्ध टीकाकार श्री पण्डित कृष्णमोहन ठाकुर एम० ए० (सं० हि०) व्याकरण-साहित्य-वेदान्ताचार्य, मीमांसा शास्त्री, अध्यक्ष श्री रणवीर-सस्कृत-महाविद्यालय, (का० हि० वि० वि०) कमच्छा, वाराणसी के पास भेज दिया था, ताकि वह इसे अवलोकन कर अपना विचार लिख भेजें। उन्होंने इसे अच्छी तरह देख कर लिख भेजा—"मुझे सङ्कलनात्मक कृति को देख कर अतीव प्रसन्नता हुई। चयन श्लाघ्य है, इसे "संक्षिप्त-वाल्मीकि-रामायण" कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी आदि आदि।"

उनके यहाँ ही आये हुए एक वृद्ध विद्वान जिन्होंने वाल्मीकीय रामायण

एवं उस पर मार्मिक प्रवचन अनेक बार कर चुके थे और कर रहे हैं, उन्हें इसे देखकर बहुत हर्ष हुआ, श्री ठाकुर जी ने उनसे आग्रह किया कि आप कृपया इसे साङ्गोपाङ्ग देख कर अपना विचार दें, क्योंकि आप इसके विशेषज्ञ समझे जाते हैं। उन महात्मा का परिचय:—पण्डित प्रकाण्ड श्री आद्याचरण पाण्डेय कार्ष्णिक व्या०-सा०-आयुर्वेदाचार्य, न्या०-सां० शास्त्री, साहित्य-रत्न; भू० पू० उपकुल पति नैमिषारण्य अध्यात्म विद्यापीठ (सीतापुर-उ०प्र०) है। पूज्यास्पद श्रीपाण्डेयजी ने इसे देख कर बड़ी सराहना की है। उनकी तो ऐसी धारणा है कि यदि विद्वज्जन इसे शिक्षण-संस्थान तक पहुँचाने का प्रयास करें तो देश का बड़ा हित होगा। अस्तु, मैं उन दोनों मूर्धन्य विद्वानों का आभारी हूँ, जिनने अपना बहुमूल्य समय इस संकलन के अवलोकन में व्यतीत किया, उन महात्माओं के प्रोत्साहन से प्रेरित हो कर ही मैं इसका प्रकाशन हो करने के लिए उद्यत हो गया।

कथानकों के सन्दर्भ का सरलता से ज्ञान हो जाय, इससे अतिसंक्षिप्त 'हिन्दो' में अभिप्राय दे दिया गया हैं। यदि यह सङ्कलन रामायण प्रेमियों को रुचिकर हुआ तो मैं अगले संस्करण में अनुवाद एवं विशद आलोचना के साथ प्रकाशन करने का साहस करूँगा। मुझसे जो विवेचनीय अंश छूट गया है, मेरे अनन्य स्नेही विद्वान् श्री कृष्णमोहन ठाकुर जी ने उसे पूरा कर परिशिष्ट में दे दिया है। आशा है जिज्ञासुओं का उससे बहुत कुछ समाधान अवश्य मिलेगा। श्री ठाकुर जीने अपने कामों में बहुत व्यस्त रहते हुए भी इसका सम्पादन किया है, यदि इनका सहयोग नहीं मिला होता तो इसका प्रकाशन असम्भव था। इस ग्रन्थ में दोनों का समानाधिकार है।

संकलनात्मक कृति की सफलता वा विफलता का मूल्याङ्कन तो विद्वान् पाठक ही कर सकते हैं, मै इसके सम्बन्ध में क्या कह सकता हूँ। हाँ, इतना अवश्य आश्वासन दे सकता हूँ कि जो त्रुटियाँ इस प्रकाशन में रह गई हैं उनको सुधार अगले प्रकाशन में अवश्य हो जायगा; केवल मुझे सूचना मिल जानी चाहिये।

अपनी निजी कृति तो यह है नहीं जिसमें अच्छे या बुरे होने का प्रश्न उठे जो कुछ इसमें है वह निर्विवाद उत्तमोत्तम हैं, अद्वितीय और अनुपम है। बात रही मात्र चयन के विषय में, सो तो मैंने पहले ही स्वीकार किया है कि मेरी अपनी अल्पज्ञता एवं अकुशलता के कारण इस की चयनविधि में त्रुटियाँ रही होगी और उसका सारा दोष मेरा होगा।

अन्त में मैं 'मिथिला ग्रन्थमाला काशी' के प्रधान सम्पादक पण्डित 'प्रवर श्री रामचन्द्र झा जी के प्रति अपना हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ कि उन्होंने इसके मुद्रण में अनेक महत्वप्रद सुझावों से इसके कलेवर को जनता के सामने उपस्थित होने योग्य बना दिया, और अपना शुभाशीर्वादवचन भी परिचय के साथ दिया है।

रामनवमी, सं० २०३० —भागवतप्रसाद सिंह

सम्पादकः



श्रीकृष्णमोहनाचार्यः ठक्कुरोपाह्वमैथिलः।
काश्यां विराजते श्रीमद्विद्वद्गणप्रतिष्ठितः॥

वाल्मीकि-रामायण की वेदमूलकता

सभी वेदों का सारभूत गायत्री मन्त्र है। उसकी बड़ी महिमा शास्त्रों ने गायी हैं। महर्षि वाल्मीकिजी ने अपने रामायण को २४००० हजार श्लोकों में आबद्ध किया है। "तपः स्वाध्याय निरत' से लेकर 'तामेव रात्रि सीताऽपि ...तक एक एक सहस्र पर एक एक गायत्री के अक्षर से काव्य का आरम्भ होता है। गान (स्तुति) करने वाले के त्राण कनेवाली होने के कारण ही गायत्री कही जाती है। इस रामायण का भी लव-कुश द्वारा ऋषि ने गान कराया है, इसके श्रवण, मनन और निदिध्यासन करने पर त्रिविध तापों से प्राणियों का त्राण होता है। रामावतार के समय ही ब्रह्मा जी वाल्मीकि रूपमें प्रचेता ऋषि के यहाँ प्रादुर्भूत हुए और वेद, रामायण के रूप में परिणत हो गया। जैसा कि कहा गया है—

"वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे।
वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षाद् रामायणात्मना॥
तस्माद् रामायणं देवि! वेद एव न संशयः।"
(अगस्त्य-संहिता)

वाल्मीकि का ही पर्यायवाची "वम्र" शब्द है। इसी 'वम्र' शब्द के आधार पर हम आर्य-संस्कृति और आर्य-साहित्य के उद्गम वेद तक पहुँचते हैं। कुछ ऋग्वेद के ऋचाओं का उद्धरण यहाँ किया जाता है, जिससे रामायण का बीज इस वेद में है यह ज्ञात हो सकेगा—

(१)

"कं नश्चित्र मिषण्यसि, चिकित्वान् पृथुग्मानं वाश्रं वावृधध्यै।
कस्य तस्य दातु शवसो व्युष्टौ तक्षद् वज्रं वृत्रतुरमपिन्वत्॥"

(२)

"स हि द्युता विद्युतावेति साम पृथु योनिमसुरत्वाससाद।
स सनीळेभिः प्रसहानो अस्य भ्रातुर्न ऋते सप्तथस्य मायाः॥"

(३)

सम्राजं यातापदुष्पदायन् वर्पोता परिषत्स निष्यन्।
अनर्वा यच्छतदुरस्य वेदोघ्नञ्छिश्नदेवां अभिवर्पसाभूत्॥

ऋग्वेद अष्टक ८ अध्याय ५ वर्ग १४ मण्डल १० सूक्त ९९ मन्त्र १-२-३

इन मन्त्रों के विनियोग का अर्थ यथाक्रम निम्नोक्त हैं—

'क नश्चित्र मिषण्यसि' इस मन्त्र के विनियोग में लिखा है कि—क नश्चित्रमिति द्वादशर्चं सूक्तं विखनसः पुत्रस्य वम्रस्यार्षम्"। अर्थात्—उपयुक्त मन्त्र से १२ ऋचाओं के 'विशेषेण वेदार्थ खनति' इति विखना (ब्रह्मा) के मानसिक पुत्र वम्र हैं। 'वम्र' शब्द की व्युत्पत्ति और अर्थ वेद भाष्य से निर्णय करते हुए लिखा है कि—'वम्रोभिः नुवित्तां (परिवारितम्) गुहास्विति वल्मीकवया: 'सम्भरणमन्त्रलिङ्गात्' वल्मीककारिणो जन्तुविशेषा उच्यन्ते, ताभिः वल्मीकगर्भतामापादितो मुनिर्वाल्मीकिः। स एव च 'वम्र' इत्युच्यते। तथा च वल्मीकशब्दात् अपत्यप्रत्ययः। एव 'वम्रो' शब्दादपि गोत्रप्रत्ययस्तस्य लुक्, वाल्मीकिः, वम्र इति निष्पन्नौ।

भाव यह है कि गुफाओं में या ऐसे ही स्थलों में अपनी चारों तरफ वम्रो (वामी) बनाकर रहनेवाले जीवविशेष को वम्री कहते हैं, जिसको लोक भाषा में 'दीमक' भी कहा जाता है। उन्हीं जीवों के साथ वल्मीक के भीतर रहने वाले मुनि का योगरूढ़ नाम है'—'वम्र या वाल्मीकि'। 'तत्प्रभवेऽपि बहुलमुपलब्धेः' इस सिद्धान्त से तथा 'गोणी पुत्रः कलशी सुतः' इस उदाहरण से वाल्मीकि या वम्र वामी (वम्री) के पुत्र न होते हुए भी इनसे अपत्य अर्थ में प्रत्यय हुए हैं।

उपर्युक्त प्रथम मन्त्र का अर्थ इस प्रकार है—

'वम्र' ऋषि परमात्मा से पूछ रहे हैं कि हे गुरो ! आप चिकित्वान = स्तुति **करने योग्य पुरुष को जानते हैं तो 'कं चित्रम्' कौन ऐसा है ? जिसमें आश्चर्यजनक लोकोत्तरशायी गुण भरे हैं ? क्या उसी का 'वावृधध्यै'' पराक्रमादि वर्णन के द्वारा स्तुति करने के हेतु 'नः इषण्यसि' ? हमें प्रेरित कर रहे हैं ? जब हम उसकी आज्ञा से 'चित्रं हि, पृथुग्मानं वाश्रम्: वर्णनीय एवं उसके निरतिशय ऐश्वर्य का वर्णन करूंगा., तत्वतो 'तस्य' उस पुरुष के 'शवसः' बल पराक्रमादि 'व्युष्टौ' व्युष्ट होंगे—संसार में प्रकाशमान होंगे। ऐसी दशा में 'तस्य' उसे देने के लिये क्या है ? अर्थात्—उसकी स्तुति से क्या लाभ होगा ? इसी प्रश्न का उत्तर चौथे पाद में लिखा है कि वत्स ! 'तक्षद् वज्रं वृत्रतुरमपिन्वत्'—वह प्रसन्न होकर तुम्हारी बुद्धि को प्रसन्न कर देगा। कैसे ? अपने तेज रूपी वज्र से अज्ञानान्धकार रूपी वृत्रासुर को मारकर वह तुम्हारी बुद्धि को प्रकाश पहुँचायगा। अतः कहा 'अपिन्वत्'—स्तुति द्वारा उसे तुम तृप्त करो।**

महर्षि की इच्छा हुई कि मुझे कुछ संकेत मिले जिससे अग्रिम कर्तव्य मार्ग प्रशस्त हो जाय ? अतः संकेत देनेवाली ऋचा का प्रत्यक्ष हो रहा है, द्वितीय मन्त्र से—

"स हि' = वे ही नूतन जलद काल कमनीय राघवेन्द्र, 'द्युता' = अपनी निराकार अनन्त कान्ति को विद्युता'—जलददामिनी सीता जैसी साकार बनाकर 'साम'—शांतिपूर्वक अर्थात् प्रात: राज्याभिषेक होगा, ऐसी आज्ञा मिली, उसके पूर्व ही रात्रि में वनवास मिला, इतने पर भी साम=द्रोहरहित होकर 'वेति'= वनवास के हेतु अर्थात् वन में चले गए। वन में पहुँचने पर 'अस्य'=इस राघवेन्द्र के 'पृथु' योनि'=पृथिवी से प्रादुर्भूत होनेवाली पत्नी सीता को "असुरत्वा"=असुर धर्म से अर्थात् चोरी से 'असुर::'=रावण:, "आ ससाद" = आकर सीता को उठा ले गया। तब 'स:' वही मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने "सनीडेभि:"=अपने समान लोकवासी अर्थात् मर्त्यलोकनिवासी हनुमान् आदि पार्षदों के साथ उस पर आक्रमण किया, और 'अरम' = इस सीतापहारी रावण से की हुई नागपाश बन्धनात्मिकादि 'माया:'=आसुरी माया को 'प्रसहमान"=सहन करते हुए उस माया का विनाश भी किया। क्योंकि "ऋते" = सत्यात्मा राम के विषय में वह "माया'=आसुरी शक्ति 'न' सफल नहीं हो सकी। यद्यपि वह माया "सप्तथस्य भ्रातु:" = की थी, अर्थात् वह रावण, विष्णु से कश्यप, मरीचि, पुलस्त्य, विश्रवा, आदि से रावण सातवीं पीढ़ी में उत्पन्न हुआ है। इसकी माया प्रबल है, तथापि 'ऋते' सत्यात्मा राम में 'न =उसकी माया निष्फल ही सिद्ध हुई ॥ २ ॥

इन दो ऋचाओं से जब महर्षि को पूर्ण सन्तोष नहीं हुआ, तब तीसरी ऋचा का भी प्रत्यक्ष हुआ—**स वाजं इत्यादि**

'स'=वे मायारहित श्री रामभद्र 'अनर्वा' होकर अर्थात् अश्ववाहन से रहित होकर (पैदल ही) "वाजं"=संग्राम में याता अभूत्"=रावण की रण भूमि लङ्का में पधारे। हाय ! प्रभु के सुकोमल चरण कण्टक विद्ध हुए होंगे ! क्योंकि पैदल ही रण-भूमि में पधारे हैं। रामरसिक महर्षि के अन्तस्तल में इस भावना के उठते ही समाधि विचलित हो उठी, अभी आगेवाली पदावली से प्रत्यक्ष हुआ कि "अपदुष्पदायन्"=अपगत दु:स्थितं पदस्थानम्' इत्यादि। अर्थात् जिस मार्ग में कण्टक, कीचड़, जल आदि क्लेशदायक वस्तु नहीं हैं, उसी मार्ग (सेतु) से राघवेन्द्र लंका गये हैं, और राम 'स्वर्णात्' हैं अर्थात् लोकों के विभाजक विष्णु हैं, अत: उनके विषय में चिन्ता मत करो। "शतदुरस्य"=सौ दरवाजे वाली लंका के राजा रावण के पास पहुँच कर उसका वध किया। पुन: महर्षि को अन्तस्तल में यह भावना उठी कि अरे ? रावण तो ब्रह्मकुल में उत्पन्न हुआ है, तब उसका वध कैसे ? इसके समाधान में यह आया कि रावणादि महर्षि कुल में उत्पन्न होते हुए भी बध करने योग्य है, क्योंकि वे सब 'शिश्नदेवा' अर्थात् कामुक हैं। अतः उन कामुकों का वध करके श्रीराम ने रावण के "वेद:"

को अर्थात् धन सम्पत्ति को 'सनिश्यन्'=उसके भाई विभीषण को देते हुए "परिष दत्" अपने पार्षद हनुमदादि से घिरकर सुशोभित होते हुए ऐसे ऐसे दुष्टों का संहार तथा धर्म का संस्थापन करके श्रीराम 'वर्पसा अभ्यभूत्'=अपने स्वरूप में (वैकुण्ठ में जाकर) अवस्थित हुए । (उद्धृत–श्री पं॰ आद्याचरणपाण्डेयकृत—विरही भरत)

व्याख्याकार 'कं नश्चित्र' १२ ऋचाओं का इन्द्रपरक स्तुति का भी अर्थ अभिव्यक्त करते हैं।

अथर्ववेद ३. ३०. २ तथा ३. ३०. ३ यथाक्रम "मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्निति" 'जाया पत्ये मधुमतीं वाचं ददतु शन्तिवामिति'' इन दोनों मन्त्रों से राम-भरत एवं राम-लक्ष्मण के चरित तथा जानकी देवी का चरित स्पष्ट अभिव्यक्त हो रहे हैं।

रामायण में भगवदवतार का सिद्धान्त, जैसा कि—

"एवं दत्त्वा वरं देवो देवानां विष्णुरात्मवान् ।
मानुष्ये चिन्तयामास जन्मभूमिमथात्मनः ॥
ततः पद्मपलाशाक्षः कृत्वात्मानं चतुर्विधम् ।
पितरं रोचयामास तदा दशरथं नृपम् १.१६. २९.३०

इत्यादि पद्यों का बीज 'अजायमानो बहुधा विजायत' शुक्लयजुर्वेद ३१–१९ द्वारा सूचित हो रहा है ।

'आयन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः' शुक्लयजुर्वेद १९-५८ प्रतिपादित आवाहन किये गये पितरों का आवागमन भूत हो रहा है । रामायण में भी स्वर्गत महाराज दशरथ के राम के समक्ष उपस्थित होकर समालिङ्गन करते हुए बातचीत करने का प्रसंग वर्णित हुआ है—

"हर्षेण महताविष्टो विमानस्थो महीपतिः ।
प्राणैः प्रियतरं दृष्ट्वा पुत्रं दशरथस्तदा ॥
आरोप्याङ्के महाबाहुर्वरासनगतः प्रभुः ।
बाहुभ्यां संपरिष्वज्य ततो वाक्यं समाददे ॥"
(वा॰ रा॰ लं॰ ११९–१२)

'तेह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः'

ऋग्वेद १०. ९०. १६ इत्यादि वचनों से सूचित देवसत्तावाद रामायण में शरभङ्गाश्रम में आए हुए इन्द्र के वर्णन प्रसंग में कहा गया है—

रथप्रवरमारूढमाकाशे विबुधानुगम् ।
असंस्पृशन्तं वसुधां ददर्श विबुधेश्वरम् ॥ वा. रा. ३-५-५

देव-मन्दिरों के और देवमूर्त्तियों की सूचना निम्न वैदिकवचन द्वारा मिलती है—

'देवतायतनानि कम्पन्ते, दैवतप्रतिमा हसन्ति ।'

(षड्विंश ब्राह्मण प्रपाठक १० खण्ड) रामायण में भी उक्त वैदिक वचनों द्वारा सूचित देवमन्दिरों एवं देवमूर्तियों की सत्ता स्पष्ट परिलक्षित होती है—

"प्रविवेश ततो रामः सीतया सह लक्ष्मणः ।
प्रशान्तहरिणाकीर्णमाश्रमं ह्यवलोकयन् ॥
स तत्र ब्रह्मणः स्थानमग्नेः स्थानं तथैव च ।
विष्णोः स्थानं महेन्द्रस्य स्थानं चैव विवस्वतः ॥
कार्त्तिकेयस्य च स्थानं धर्मस्थानं च पश्यति ।"

वा० रा० ३-१२ १६-२०

'आब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम् आराष्ट्रे राजन्यः' इत्यादि (शुक्ल यजुर्वेद २२. २२) वचनों से वैदिकसर्वगुणसमन्वित आदर्श, रामायणोक्त राम-राज्य में महर्षि वाल्मीकिजीने वर्णित किया है—

"नित्यपुष्पा नित्यफलास्तरवः स्कन्ध-विस्तृताः ।
कामवर्षी च पर्जन्यः सुखस्पर्शी च मारुतः ॥
स्वकर्मसु प्रवर्त्तन्ते तुष्टाः स्वैरेव कर्मभिः ।
आसन् प्रजा धर्मपरा रामे शासति नानृताः ॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा लोभविवर्जिताः ।
सर्वे लक्षणसम्पन्नाः सर्वे धर्मपरायणाः ॥"

वा० रा० ६-१२, ८०, १०२-१०४

उदाहरणार्थ उपर्युक्त वैदिकवचनों का दिग्दर्शनमात्र यहाँ किया गया है ।

ऊपर हम कह आये हैं कि २४००० श्लोक इस रामायण में हैं, वे २४ अक्षर गायत्री अर्थ को स्पष्ट रूप से देनेवाले हैं । विवेचक ध्यान से निम्न **गायत्री रामायण** का विचार करें—

(त) तपः स्वाध्यायनिरतं तपस्वी वाग्विदांवरम् ।
नारदं परिपप्रच्छ वाल्मीकिर्मुनिपुङ्गवम् ॥ १ ॥

(स) स हत्वा राक्षसान् सर्वान् यज्ञघ्नान् रघुनन्दनः ।
ऋषिभिः पूजितस्तत्र यथेन्द्रो विजये पुरा ॥ २ ॥

(वि) विश्वामित्रस्तु धर्मात्मा श्रुत्वा जनकभाषितम् ।
वत्स ! राम ! धनुः पश्य इति राघवमब्रवीत् ॥ ३ ॥

(तु) तुष्टावास्य तदा वंशं प्रविश्य स विशांपतेः ।
शयनीयं नरेन्द्रस्य तदासाद्य व्यतिष्ठत ॥ ४ ॥

(व) वनवासं हि सख्याय वासांस्याभरणानि च ।
भर्त्तारमनुगच्छन्त्यै सीतायै श्वशुरो ददौ ॥ ५ ॥

(र) राजा सत्यं च धर्मश्च राजा कुलवतां कुलम् ।
राजा माता पिता चैव राजा हितकरो नृणाम् ॥ ६ ॥

(नि) निरीक्ष्य सुमुहूर्तं तु ददर्श भरतो गुरुम् ।
उटजे राममासीनं जटामण्डलधारिणम् ॥ ७ ॥

(य) यदि बुद्धिः कृता द्रष्टुमगस्त्यं तं महामुनिम् ।
अद्यव गमने बुद्धिं रोचयस्व महायशः ॥ ८ ॥

(भ) भरतस्यार्यपुत्रस्य श्वश्रूणां मम च प्रभो ! ।
मृगरूपमिदं व्यक्तं विस्मयं जनयिष्यति ॥ ९ ॥

(ग) गच्छ शीघ्रमितो राम ! सुग्रीवं तं महाबलम् ।
वयस्यं तं कुरु क्षिप्रमितो गत्वाद्य राघव ! ॥१० ॥

(दे) देशकालौ भजस्वाद्य क्षममाणः प्रियाप्रिये ।
सुखदुःखसहः काले सुग्रीववशगो भव ॥ ११ ॥

(व) वन्द्यास्ते तु तपः सिद्धास्तपसा वीतकल्मषाः ।
प्रष्टव्या चापि सीतायाः प्रवृत्तिर्विनयान्वितैः ॥१२॥

(स) स निर्जित्य पुरीं श्रेष्ठां लङ्कां तां कामरूपिणीम् ।
विक्रमेण महातेजा हनूमान् कपिसत्तमः ॥ १३ ॥

(ध) धन्या देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
मम पश्यन्ति ये नाथं रामं राजीवलोचनम् ॥ १४ ॥

(म) मङ्गलाभिमुखी तस्य सा तदासीन्महाकपेः ।
उपतस्थे विशालाक्षी प्रयता हव्यवाहनम् ॥ १५ ॥

(हि) हितं महार्थं मृदुहेतुसंहितं व्यतीतकालायति सम्प्रति क्षमम् ।
निशम्य तद्वाक्यमुपस्थितज्वरः, प्रसङ्गवानुत्तरमेतदब्रवीत् ॥

(ध) धर्मात्मा रक्षसां श्रेष्ठः सम्प्राप्तोऽयं विभीषणः ।
लङ्कैश्वर्यं ध्रुवं श्रीमानयं प्राप्नोत्यकण्टकम् ॥ १७ ॥

(यो) यो वज्रपाताशनिसन्निपातात् न चुक्षुभे चापि चचाल राजा।
स रामबाणाभिहतो भृशार्त्तः चचाल चापं च मुमोह वीरः

(य) यस्य विक्रममासाद्य राक्षसा निधनं गताः।
तं मन्ये राघवं वीरं नारायणमनामयम् ॥ १९ ॥

(न) न ते ददृशिरे रामं दहन्तमरिवाहिनीम्।
मोहिताः परमास्त्रेण गान्धर्वेण महात्मना ॥ २० ॥

(प्र) प्रणम्य देवताभ्यश्च ब्राह्मणेभ्यश्च मैथिली।
बद्धाञ्जलिपुटा चेदमुवाचाग्निसमीपतः ॥ २१ ॥

(च) चालनात् पर्वतस्यैव गणा देवस्य कम्पिताः।
चचाल पार्वती चापि तदाश्लिष्टा महेश्वरम् ॥ २२ ॥

(द) दाराः पुत्राः पुरं राष्ट्रं भोगाच्छादनभोजनम्।
सर्वमेवाविभक्तं नौ भविष्यति हरीश्वर ! ॥ २३ ॥

(या) यामेव रात्रिं शत्रुघ्नः पर्णशालामुपाविशत्।
(त) तामेव रात्रिं सीताऽपि प्रसूता दारकद्वयम् ॥२४॥

इदं रामायणं कृत्स्नं गायत्रीबीजसंयुतम्।
सकृत्-पठनमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

हमारी निधि वेद है। उसके अतिगम्भीर अर्थ के धारण करने में आविर्भूत प्रकाश साक्षात् कृतधर्मा महर्षि की 'ऋतम्भरा प्रज्ञा' ही समर्थ है। अनधिकारियों को गडेड़ियों के गीतसा मालूम पड़ता है, उनके आगे यह गान भैंस के बीन बजाने के समान है। अतः उनके लिए श्रवण भी निषिद्ध माना गया है। वेद सर्वसाधारण के उपयोगी वस्तु नहीं है। वेद का ही सर्वलोकहितकारी संस्करण वाल्मीकीय रामायण है। इस प्रकार इस रामायण की वेदमूलकता अकाट्य प्रमाण सिद्ध है; इसमें सन्देह और शंका का कोई अवसर ही नहीं है।

महर्षि वाल्मीकि

"यो वै वेदान् प्रहिणोति तस्मै" इस श्रुति के प्रमाण से सम्पूर्ण वेद ब्रह्मा के पास पूर्व से ही सुरक्षित है। वैदिक ऋचाओं के साक्षाद् द्रष्टा ऋषियों को जब वे ऋचाएं प्रत्यक्ष हुईं तब वे उनके सत्यासत्य का परीक्षण करने हेतु ब्रह्मा के पास आकर उन ऋचाओं को सुनाते थे। ब्रह्मा उनका परीक्षण करके ऋषियों को 'मन्त्रद्रष्टा' की उपाधि से अलंकृत करते थे, तदनुसार महर्षि वाल्मीकि ने भी प्रत्यक्ष हुई वेद की ऋचाओं को उन्हें सुनाया। उन्हें ब्रह्मा ने 'वज्र' की उपाधि

दी तथा समय आने पर अपने सम्पूर्णांश के साथ उनमें प्रविष्ट होकर भार्गव-गोत्रीय प्रचेतस ऋषि के यहाँ उनके दशमपुत्र रूप में जन्म लिया। 'मा निषाद' को मनन करने में व्यस्त वाल्मीकि जी के पास ब्रह्मा स्वयं आकर उन्हें निश्चिन्त करते हुए कहते हैं कि—मेरी आज्ञा से सरस्वती तुम्हारी जिह्वा पर आ चुकी हैं, तुम निर्भय होकर श्रीराम की कथा का वर्णन करो, तुम्हारी वाणी कभी मिथ्या न होगी—

"आजगमाम ततो ब्रह्मा लोककर्त्ता स्वयं प्रभुः।"
"मच्छन्दादेव ते ब्रह्मन्! प्रवृत्तेयं सरस्वती।"
"कुरु रामकथां पुण्याम्।"
"न ते वागनृता काव्ये काचिदत्र भविष्यति।"

(वा० रामायण बा० का०)

अतः प्रचेता ऋषि के यहाँ उत्पन्न होकर आदि कवि ने अपने वैदिक काल से पूर्वाभ्यस्त रामायण को ही एक लोकोत्तर कलेवर प्रदान किया है, न कि अपने विचार से किसी नूतन वस्तु का निर्माण।

भगवान् शंकरजी ने अम्बा-पार्वतीजी से कहा है कि ब्रह्मा वाल्मीकि रूप में अवतरित हुए, उनकी वाक् वाणी सरस्वती रूप में प्रकट होकर पवित्र रामचरित का गुणगान किया—

"वाल्मीकिरभवद् ब्रह्मा वाणी वाक् तस्य रूपिणी।
चकार रामचरितं पावनं चरितव्रतः॥" (स्कन्द-पुराण)

सौ करोड़ के विस्तार में ब्रह्माजी द्वारा श्रीराम का जो उपाख्यान कहा गया था, उसे ही वाल्मीकि जी ने अपने रामायण में कहा है:—

वाल्मीकिना च यत्प्रोक्तं रामोपाख्यानमुत्तमम्।
ब्रह्मणा चोदितं तच्च शतकोटि प्रविस्तरम्॥" (मत्स्य-पुराण)

श्रीरामावतार के समय वाल्मीकि होकर ब्रह्मा के अवतरण की बड़ी आवश्यकता थी, क्योंकि श्रीराम ही तो सभी अवतारों के मूल कारण ब्रह्म है—

"सर्वेषामवताराणामवतारी रघूत्तमः।
रामपादनखज्योत्स्ना परब्रह्मेति गीयते॥"

(अगस्त्यसंहिता)

प्राचेतस ऋषि के जन्म समय चित्रा नक्षत्र होने के कारण इनका नाम 'ऋक्ष' रखा गया था—

"ऋक्षोऽभूद् भार्गवस्तस्माद् वाल्मीकिरभिधीयते।"

(विष्णुपुराण)

'ऋक्ष' राशि नाम होने के कारण लव और कुश ने ऋषि का राशिनाम लेकर प्रणाम न किया, किन्तु—

"आत्मनाम गुरोर्नाम नामातिकृपणस्य च।
श्रेयस्कामो न गृह्णीयाज्ज्येष्ठापत्यकलत्रयोः॥"

इत्यादि शास्त्रों से निषेध समझकर प्रणाम करते समय राशिनाम "ऋक्ष" का ग्रहण न कर गुरु का नाम प्राचेतस लेना ही उचित समझा—

"अतृप्तस्तं मुनिं वन्दे प्राचेतसमकल्मषम्।

(वा० रामायण)

भृगुवंशीय होने से ही वाल्मीकि 'भार्गव' भी कहलाये हैं—

"भार्गवेणेति संस्कृतौ' 'भार्गवेण समाधिना।"

(वा० रा० उत्तर काण्ड)

स्कन्द पुराण के वैशाख माहात्म्य में इस प्रकार कथा आती है कि—स्तम्भ नाम के एक वत्सगोत्रीय ब्राह्मण थे। जन्मान्तरीय कुसंस्कारवश वे ब्राह्मणोचित-धर्म-कर्म से वंचित रहे। फलतः उनका द्वितीय जन्म व्याध के घर में हुआ, किन्तु त्रिकालज्ञ 'शंख' मुनि की कृपा से ही उनका व्याध-कर्म भी छूट गया। दूसरे जन्म में उस जीवात्मा ने ब्राह्मणवंश में पुनः शरीर ग्रहण किया। इस जन्म में इनका नाम अग्नि 'अग्निशर्मा' हुआ। शर्मा जीके साथ पुरातनीय दो संस्कार थे—पहला तो व्याध योनिका, और दूसरा 'शंख' मुनि के सत्संग को। इस शरीर से इनका उपनाम 'रत्नाकर' भी था। इन्होंने अकारण कृपालु सप्तर्षियों की कृपा से पुरातन कुसंस्कार को नष्ट करने हेतु अग्नि, सूर्य, चन्द्र के बीजात्मक राम' महामन्त्र के जप करने का उपदेश पाया। अपने मस्तक का नीचे एव दोनों पांव को ऊपर अर्थात् शीर्षासन कर 'राम' मन्त्र का जप करते करते अग्नि शर्मा ने "तस्मिन्नेव समर्पितात्मलोकवेदत्वात्" इस न्याय से जप काल में समाधिस्थ हो गये। उनके ऊपर दीमकों ने वामी बना ली। बहुत दिनों के बाद इनको निर्विकल्प समाधि जब भग हुई, तब ये वामी से बाहर आये। तभी से इन्हें 'वम्र' या वाल्मीकि कहा जाने लगा।

स्कन्द पुराण विष्णुखण्ड के अन्तर्गत वैशाखमाहात्म्य अध्याय १७ से २१ में रामायणकार वाल्मीकिजी की कथा इस प्रकार दी गयी है—

'शंख' नामक ऋषि वैशाख मास में घूमते हुए किसी व्याध से मिले। व्याधने

उनके द्रव्यों की चोरी की। पर शंख मुनि ने उसे विष्णु भगवान् की महिमा बतायी और पापकर्मों से बचने के लिए उपदेश दिया। जब उसके मन में श्रद्धा जगी, तब उसे बुलाकर मुनि ने 'राम' मन्त्र की दीक्षा दी।

'वैशाखे मेषगे सूर्ये स्नात्वा प्रागरुणोदयात्।
कृत्वा सन्ध्यादिकं कर्म तथा सन्तर्प्य चाखिलान्॥
व्याधमाहूय हृष्टात्मा मूर्ध्नि प्रेक्ष्य परीक्ष्य च।
रामेति द्व्यक्षरं नाम ददौ वेदाधिकं शुभम्॥

(वैशाख माहात्म्य ११। ५१–५३)

इस माहात्म्य में यह भी कहा गया है कि राममन्त्र जप के प्रभाव से उस व्याध ने ही दूसरे जन्म में वाल्मीक नामक ऋषि के कुल में उत्पन्न हुआ। उसने वैशाख मास में पालनीय धर्मों का आचरण कर ही ऋषिकुल में उत्पन्न होकर रामायण काव्य रचा था। यहाँ पर वाल्मीकि के पिता का नाम 'कृणु' उल्लेख हुआ है 'कृणुनामा मुनिः' (३१।६४) वाल्मीकि (वामी) से आवृत होने के कारण कृणु का नाम वाल्मीक हुआ और इनके पुत्र का नाम वाल्मीकि (रामायणकार) हुआ। वैशाख मास में तप परायण होने के कारण कुछ विद्वानों का मत है कि इसी मास में इनका उत्सव मनाना चाहिये।

'प्रकाश क्षेत्र माहात्म्य' अध्याय ३७८ में कहा गया है कि रामायण कार वाल्मीकि का नाम था–वैशाख। यह अत्यन्त रौद्रकर्मी (क्रूर कर्म करने वाले) थे। इन्होंने घर-गृहस्थी चलाने के लिए गरीब होने के कारण 'दस्यु' वृत्ति (डाकुओं का आचरण) अपनाया था। बाद में सप्तर्षियों के बहुत समझाने पर इनका ज्ञानोदय हुआ और ये नारदजी की दीक्षा से 'राम' मन्त्र के जप से सिद्ध होकर रामायण के रचयिता आदिकवि बने।

'अवन्ती क्षेत्र माहात्म्य' (अ० २४) में भी वाल्मीकि जी का प्रसंग 'अग्निशर्मा' नाम से आया है। उनकी कथा वहां यही दी गयी है कि वे सप्तर्षियों के उपदेश से तप में प्रवृत्त हुए। तप में इतने तल्लीन हुए कि उनके शरीर में वामी लग गयी। उससे निकलने के बाद उस अग्निशर्मा का ही नाम वाल्मीकि हो गया।

वृहद्धर्मपुराण (पूर्वखण्ड अ० ५) में भी वाल्मीकि का चरित्र है। जहां तमसा नदी के साथ-साथ 'मा निषाद' पद्य का उल्लेख है।

नागरखण्ड (अ० १) में भी वाल्मीकि चरित्र मिलता है। यहाँ वाल्मीकि का मूलनाम लोहजङ्घ दिया गया है। अन्य कथायें प्रकाशक्षेत्रीय समान ही हैं।

इस प्रकार इनके स्तम्भ[१], व्याध[२], अग्निशर्मा[३], रत्नाकर[४], वज्र[५], वाल्मीकि,

ऋक्ष[७], प्राचेतस[८], भार्गव[९], वाल्मीक[१०] कृणु[११], लोहजङ्घ[१२] नाम शास्त्रों द्वारा सिद्ध होते हैं।

महर्षि वाल्मीकि ही तुलसी

प्रश्न—वाल्मीकीय रामायण में	**उत्तर**—वा० रा० में
'कोन्वस्मिन् सांप्रतं लोके	इक्ष्वाकुवंश प्रभवो
गुणवान् कश्च वीर्यवान् ?	रामो नाम जनै श्रुतः
प्रश्न—रामचरित मानस में	**उत्तर**—रा० च० मा० में
राम कवन प्रभु पूछहुँ ?	एक बार त्रेता जुग माहीं

उपर्युक्त वैदिक मन्त्रों में 'कं' नश्चित्रम् से प्रश्न किया गया है। आगे दोनों रामायण में क वर्ग से ही दोनों प्रश्न हुए हैं। और उत्तर 'इ' एवं 'ए' स्वर से दिया गया है। चमत्कारचिन्तामणिकार ने स्वरों और वर्गो के स्वामी का निर्देश करते हुए लिखा है 'कि 'अवर्गेशस्तु सूर्यः स्यात्, 'क' वर्गेशस्तु लोहितः। कवर्ग मंगल और स्वर के सूर्य स्वामी हैं। मंगल भूमि पुत्र हैं, सीता भी भूमिजा हैं। सत्ययुग, त्रेता, कलियुग इन तीनों युगों में वाल्मीकि की परमाराध्या जगदम्बिका सीता ही हैं, यह वाल्मीकि जी ने 'सीतायाश्चरितं महत्' कहकर स्पष्ट घोषित किया है। उत्तर स्वर से दिये गए हैं इस सीता चरित्र जैसे सुगोप्य चिन्तामणि को पवित्र रामचरित्र में लपेट कर रखने के लिए कहा गया है। रामचरितमानस के प्रथम तीन श्लोक अनुष्टुप् छन्द में हैं। अनुष्टुप् छन्द महर्षि वाल्मीकि जी की ही 'वैयक्तिक सम्पत्ति है', इसे स्वीकार करना ही होगा। इससे प्रतीत होता है कि रामचरितमानस के रचयिता अनुष्टुप् छन्द के पूर्वाभ्यासी वाल्मीकि जी ही हैं।

'नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद् रामायणे निगदितम्।'

यह ७ वाँ श्लोक रामचरित मानस मे कहा गया है—

यहां भूतकाल में 'क्त' प्रत्यय हुआ है। कर्तृपद पद्य में कहीं भी नहीं है। 'मया' पद के अध्याहार करने से ही अर्थ होगा कि मया तुलसीदासेन पूर्वजन्मनि वाल्मीकिनाम्ना प्रसिद्धेन रामायणे निगदितम् कथितम्। इस रामायण में नाना पुराणादि सम्मत बातें ही नहीं कही गयी हैं, किन्तु क्वचिदन्यतोऽपि। अर्थात् पहले रामायण रचनाकाल में मैं इतिहास लेखक ही था, यथा घटित घटनाओं को ही लिखने में बाध्य था, इस समय इस मानस में पहले के रामायण से कई स्थलों में अपनी प्रेमाभक्ति के कारण परिवर्तन कर दे रहा हूँ। अतः इस प्रत्यक्ष प्रमाण से महर्षि वाल्मीकि ही महात्मा तुलसीदास हुए हैं, ऐसा सिद्ध हो रहा है। यह बात उनके निम्न कथन से भी परिलक्षित होता है—

"जन्म जन्म जानकी नाथ के,
गुन गन तुलसीदास गाये।"

गोस्वामी हित-हरिवंश जी की भी यही धारणा है—

"कवि कोकिल पूरव हते, त्रेता जे हरिवंशहित।
"हरि नाम स्वाति कलिमाहि, तेइ तुलसी चातक भयो॥"

श्री नाभादासजीने कहा है—

"कलि कुटिल जीव निस्तार हित, वाल्मीकि तुलसी तुलसी भयो।"

महाकवि नन्ददास जी कहते हैं—

राखी जिनको टेक मदनमोहन गिरधारी।
वाल्मीकि अवतार कहत जेहि संत प्रचारी॥

उद्धृत- [विरही भरत]

महर्षि वाल्मीकि एवं रामायण का समय

भारतीय परंपरा में युग मन्वन्तर और कल्प की क्रमशः बड़ी संख्या है। सत्य-युग, त्रेता, द्वापर एवं कलियुग ये चार युग हैं। सत्ययुग १७ लाख २८ हजार वर्ष का, त्रेता युग १२ लाख ९० हजार वर्ष का, द्वापर युग ८ लाख ६४ हजार वर्ष का और कलियुग ४ लाख ३२ हजार वर्ष का होता है। ४ युगों का १ महायुग, ७१ महायुग का १ मन्वन्तर और १४ मन्वन्तरों का १ कल्प माना गया है। वर्तमान समय में श्वेतवाराह कल्प के अन्तर्गत सप्तम वैवस्वत मन्वन्तर चल रहा है। उस मन्वन्तर का २८ वाँ यह कलियुग है। उसका प्रथम चरण प्रारम्भ है। यह गणना परम्परा आज तक भारतीय पञ्चाङ्गों में हम पाते आ रहे हैं, जिनके आधार पर धार्मिक कार्य होते हैं—

वर्तमान सप्तम वैवस्वत मन्वन्तर के आद्ये त्रेतायुग में 'भृगु' आदि ऋषियों की उत्पत्ति हुई हैं।

भृगुरगिरामरीचिः, पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः।
अत्रिश्चैव वसिष्ठश्च अष्टौ ते ब्रह्मणः सुता॥

[वायुपुराण, अनुषङ्गपाद ६५।११]

ये आठ ब्रह्मा के मानस पुत्र थे। वर्तमान कल्प के प्रथम स्वायम्भुवमन्वन्तर के आधे त्रेतायुग में ब्रह्मा के नव मानस पुत्र उत्पन्न हुए थे, जो रुद्र के शाप से नष्ट हो गए—

स्वायम्भुवप्रसूताम चाक्षुषस्यान्तरे गते।
पितामहात्मजाः सर्वे तव श्रेयो भविष्यति॥

स्वायम्भुवेऽन्तरे शप्ताः सत्यार्थेन भवेन तु ।।

(वायुपुराण अनुषङ्गपाद ६०।१९-२०)

उक्त वचनमार्कण्डेय, मत्स्य और विष्णुपुराण में भी आये हैं। 'भृगु' ऋषि के पुत्र 'च्यवन' ऋषि थे। उनकी उत्पत्ति वैवस्वतमन्वन्तर के तृतीय द्वापर युग में हुई थी। ऋग्वेद १० मण्डल का १९ वाँ सूक्त का प्रत्यक्ष ऋषिको समाधि में हुआ था। अतएव उक्त सूक्त का आविर्भाव काल तृतीय द्वापर युग हुआ। वह विक्रम संवत् १० करोड़ ४८ लाख ४८ हजार २० वर्ष का है। 'च्यवन' ऋषि के पुत्र आप्तवान् थे। 'आप्तवान्' 'ऊर्व' और 'उर्व' के 'ऋचीक' हुए। ऋचीक के जमदग्नि, अग्निवेश, वाल्मीकि आदि १०० पुत्र थे। जमदग्नि ऋषि भी तृतीय द्वापर युग के सन्ध्याकाल के हैं और ऋग्वेद दशम मण्डल के ११० सूक्त के ऋषि हैं, अतः उक्त सूक्त के आविर्भाव का समय भी तृतीय द्वापर युग के सन्ध्यांश का अन्तिम काल हुआ। वल्मीक के पुत्र अग्नि थे, और वल्मीक के अपत्य होने के कारण वाल्मीकि अग्नि कहलाए।

भार्गव वंशज वाल्मीकि अग्नि तमसा नदी के तट पर स्थित आश्रममें रहते थे, यह स्थान वर्तमान आजमगढ़ जिला (उत्तर-प्रदेश) के अन्तर्गत है। इसी वाल्मीकि अग्नि आश्रम में राम ने जानकी को निर्वासित किया था। राम के राज्याभिषेक होने के पश्चात् रामायण की रचना भार्गव वाल्मीकि अग्नि ऋषि ने की—

"प्राप्तराजस्य रामस्य वाल्मीकिर्भगवानृषिः।
चकार चरितं कृत्स्नं विचित्रपदमात्मवान् ॥"

[रा० बा० का० ४.१०३]

रामायण की रचना करने के अनन्तर ऋषि ने राम की राज्य सभा में उत्तर काण्ड का पाठ लव और कुश से करवाया था—

"तथा समुपविष्टेषु ब्रह्म-विष्णु-महात्मसु।
भविष्यदुत्तरं काव्यं जगतुस्तौ कुशीलवौ ॥

[वा० रा० उ० का० ९९।२]

दाशरथि राम का काल

वैवस्वत मन्वन्तर के २४ वें त्रेतायुग में दशरथात्मज राम उत्पन्न हुए।

चतुर्विंशे युगे रामो वसिष्ठेन पुरोधसा।
वधाय रावणस्यार्थे यज्ञे दशरथात्मजः ॥

[वायुपुराण अनुषङ्गपाद, ९८,९१]

इस श्लोक में २४ वां युग लिखा है, किंतु उसके अग्रिम श्लोक निम्नोक्त है, जिस में त्रेतायुग का नाम स्पष्ट आया है—

त्रेतायुगे चतुर्विंशे रावणस्तपसः क्षयात्।
रामं दाशरथिं प्राप्य निधनाश्चायमोयिवान् ॥
[वा० पु० अ० पा० ७७–४८]

उक्त त्रेता वर्तमान वैवस्वतमन्वन्तर का १४ वां है, जो विक्रम संवत् पूर्व १ करोड़ ९९ लाख ४० हजार २० वर्ष का होता है।

डा० भण्डारकर आचार्य पाणिनि के बाद 'रामायण' का रचनाकाल मानते हैं।

श्री ए० बी० कीथ ई० सन् के पूर्व अर्ध शताब्दी मानते हैं।

प्रो० जैकोबी ई० सन् के पूर्व छठो शताब्दी मानते हैं।

बहिरंग प्रमाण—महाभारत में रामायण से कुछ श्लोक उद्धृत किये गये हैं। महाभारत के वनपर्व में राम की कथा का वर्णन है। उसमें वाल्मीकि का एक महान् ऋषि के रूप में वर्णन किया गया है।

बौद्ध साहित्य पाली जातकों में दशरथ जातक आदि में रामकथा उपलब्ध होती है। रामायण का एक श्लोक (६–१२८) पाली रूप में प्राप्त होता है। इस प्रकार बहिरंग प्रमाणों से रामायण का समय ईसा से २०० ई० पूर्व ५०० ई० पू० के मध्य रखा जा सकता है।

अन्तः साक्ष्य—मूलरामायण में अयोध्या नामक राजधानी का उल्लेख है[1]। बुद्ध के समय से जैन और बौद्ध ग्रन्थों में इस अयोध्या का 'साकेत' नाम प्रसिद्ध हो गया था। पतञ्जलि ने भी "अरुणद् यवनः साकेतम्" ऐसा कहा है। 'लव' ने श्रावस्ती ही अपनी राजधानी बनाई। अतः प्रमाणित होता है कि रामायण की रचना बुद्ध से पूर्व में हो चुकी है।

रामायण में मिथिला एवं विशाला दो नगरियों का वर्णन है। पर बुद्ध के समय दोनों मिलकर वैशाली नगरी का नाम हो गया इससे इसकी रचना बुद्ध से बहुत पहले हुई।

बुद्ध पूर्व ही भारत का उत्तरी भाग आर्य में कहलाता था। कौशल, अंग, कान्यकुब्ज, मगध, मिथिला आदि अनेक छोटे-छोटे राज्यों में देश विभक्त था। बुद्ध

---

१. रामायण में उस स्थान पर राम के जाने का वर्णन है जहां आज पटना नगर बसा है, किन्तु वहां पाटलिपुत्र का नाम नहीं आया है। अतः पाटलिपुत्र के बसने से पूर्व इसकी रचना हुई है।

पूर्व भारत में हो यह राजनीतिक अवस्था पायी जाती है। इस दृष्टि से ५०० ई० पू० ही आधुनिक विवेचक के मत से रामायण की रचना हुई।

भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के मूलस्रोत जिस रामायण से ज्ञात होता है, उसका समय निर्धारण पक्षपातरहित होकर इस संस्कृति में दीक्षित विद्वानों की ही सम्मति से हो न्यायोचित समझना चाहिए।

इस प्रकार उपर्युक्त रामायण के अन्तरंग एवं अन्य प्रमाणों के आधार पर महर्षिवर्य वाल्मीकि राम के समकालीन थे तथा उन्होंने अपने ग्रंथ की रचना राम के राज्यकाल में ही कर ली थी इसमें सन्देह का लेश भी नहीं है, तथापि पाश्चात्य दीक्षा दीक्षित आधुनिक अन्वेषकों ने 'महाभारत' के द्रोणपर्व एवं शांति पर्व तथा अन्य निर्देशों से अनुमान लगाया है कि वाल्मीकि रामायण से पूर्व भी रामकथा सम्बन्धी आख्यान प्रचलित थे, जिनके आधार पर वाल्मीकि ने अपने रामायण की रचना की। कतिपय पाश्चात्य विद्वानों की सम्मति है कि 'यह किसी एक की रचना नहीं है, रामचरित सम्बन्धी अनेक वीर गान 'सूतों' द्वारा गाये जाते रहे होंगे, कालान्तर में उन्हीं के आधार पर रामायण का आधुनिक रूप निर्मित हुआ। प्रो० जैकोबी का विचार है कि भाटों की अनेक पीढ़ियो ने असली भाग को नष्ट करते हुए रामायण में बहुत कुछ बढ़ा दिया है। किन्तु इसके विपरीत पाश्चात्य विवेकी विद्वान मेकडॉनेल ने तो उपलब्ध सम्पूर्ण रामायण को वाल्मीकि कृत ही मानते हैं। उनके अनुसार इसकी रचना पूर्वी भारत में ही हुई थी—

'The Rāmāyana, again, is, in the main, The work of a single poet, homogeneous in plan and exccution Composed in the west of India.[1]

प्रो० वेवर (Weber) महाभारत और ग्रीस देशके कवि होमर के पश्चात् रामायण का रचनाकाल मानते हैं।[2]

इस ग्रन्थ के अध्ययन से ही कनिंघम की 'ऐन्शेन्ट डिक्शनरी' 'डे' महोदय का 'जागरिफकल डिक्सनरी' तथा 'एशियाटिक सोसाइटी जर्नल' का एक महत्त्वपूर्ण पूर्ण लेख जन्म ग्रहण कर सका।

महर्षि वाल्मीकि का यह रामायण काव्य मानवजीवन के व्यवहारोपदेश का आचार्य है। सदाचारादिपालन हेतु यह अद्भुत सरस धर्मशास्त्र है। भारतीय

---

1. A Histrory of sanskrit Literctur, A. A. Macdcnell p.281
2. देखिये Weber History of Indian Litercturc.

संस्कृति का समुज्ज्वल स्वाभाविक चारुतर विशाल चित्रभवन है। नीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, अध्यात्मशास्त्र एवं चतुर्विध पुरुषार्थों का हृदयहारी कौतुकवर्धक सजीव अभिनय प्रेक्षागृह है, मानवके आन्तरिक प्रकृति को यह जिस लालित्य से विभूषित करता है, वैसे ही बाह्य प्रकृति दृश्यों का भी। इसीलिए व्यासजी ने पहले रामायण का अध्ययन कर ही पुराण एवं महाभारत की रचना में प्रवृत्त हुए।[१]

रामायण के सम्बन्ध में यह सत्य कहा गया है कि —

"वाल्मीकिगिरिसम्भूता रामाम्भोनिधि सङ्गता।
श्रीमद्रामायणो गङ्गा पुनाति भुवनत्रयम् ॥

अन्त में—

"सदूषणाऽपि निर्दोषा सखराऽपि सुकोमला।
नमस्तस्मै कृता येन रम्या रामायणीकृता ॥"
'कवीन्दुं' नौमि वाल्मीकिं यस्य रामायणीं कथाम्।
चन्द्रिकामिव चिन्वन्ति चकोरा इव साधवः ॥"

---

१. पठ रामायणं व्यास! काव्यबीजं सनातनम्।
यत्र रामस्य चरितमहं तत्र च शक्तिमान् ॥
रामायणं पाठितं मे प्रसन्नोऽस्मि कृतस्त्वया।
करिष्यामि पुराणानि महाभारतमेव च ॥
[बृहद्धर्मपुराण]

श्लोकबद्धसप्तर्षिरामायणम्

(१) कश्यपः—

जातः श्रीरघुनायको दशरथान् मुन्याश्रयात्ताटकां
हत्वा रक्षितकौशिकक्रतुवरः कृत्वाऽप्यहल्यां शुभाम् ।
भङ्क्त्वा रुद्रशरासनं जनकजां पाणौ गृहीत्वा ततो
जित्वार्धाध्वनि भार्गवं पुनरगात् सीतासमेतः पुरीम् ॥ १ ॥

[बालकाण्डम्]

(२) अत्रिः—

दास्या मन्थरया दयारहितया दुर्भेदिता कैकयी
श्रीरामप्रथमाभिषेकसमये माताऽप्ययाचद्वरौ ।
भर्त्तारं भरतः प्रशास्तु धरणीं रामो वनं गच्छता-
दित्याकर्ण्य स चोत्तरं नहि ददौ दुःखेन मूर्च्छां गतः ॥ २ ॥

[अयोध्या काण्डम्]

(३) भरद्वाजः—

श्रीरामः पितृशासनाद्वनमगात् सौमित्रि-सीतान्वितो
गङ्गां प्राप्य जटां निबध्य सगुहः सच्चित्रकूटे वसन् ।
कृत्वा तत्र पितृक्रियां स भरतो दत्त्वाऽभयं दण्डके
प्राप्यागस्त्यमुनीश्वरं तदुदितं धृत्वा धनुश्चाक्षयम् ॥ ३ ॥

[अरण्यकाण्डम्]

(४) विश्वामित्रः—

गत्वा पञ्चवटीमगस्त्यवचनाद् दत्त्वाऽभयं मौनिनां
छित्वा शूर्पणखास्यकर्णयुगलं त्रातुं समस्तान् मुनीन् ।
हत्वा तं च खरं सुवर्णहरिणं भित्वा तथा वालिनं
तारारत्नमवैरिराज्यमकरोत् सर्वं च सुग्रीवसात् ॥ ४ ॥

[किष्किन्धाकाण्डम्]

(५) गौतमः—

दूतो दाशरथेः सलीलमुदधिं तीर्त्वा हनूमान् महान्
दृष्ट्वाऽशोकवने स्थितां जनकजां दत्वाङ्गुलेर्मुद्रिकाम्।
अक्षादीनसुरान्निहत्य महतीं लङ्कां च दग्ध्वा पुनः
श्रीरामं च समेत्य देव ! जननी दृष्टा मयेत्यब्रवीत् ॥ ५ ॥

[सुन्दर काण्डम्]

(६) जमदग्निः—

रामो बद्धपयोनिधिः कपिवरैर्वीरैर्नलाद्यैर्वृतो
लङ्कां प्राप्य सकुम्भकर्णतनुजं हत्वा रणे रावणम्।
तस्यां न्यस्य विभीषणं पुनरसौ सीतापतिः पुष्पका-
रूढः सन् पुरमागतः स भरतः सिंहासनस्थो बभौ।

[लङ्काकाण्डम्]

(७) वसिष्ठः—

श्रीरामो हयमेधमुख्यमखकृत् सम्यक् प्रजाः पालयन्
कृत्वा राज्यमथानुजैश्च सुचिरं भूरि स्वधर्मान्वितौ।
पुत्रौ भ्रातृसुतान्वितौ कुशलवौ संस्थाप्य भूमण्डले
सोऽयोध्यापुरवासिभिश्च सरयूस्नातः प्रपेदे दिवम् ॥ ७ ॥

[उत्तर-काण्डम्]

फलश्रुतिः—

श्रीरामस्य कथासुधातिमधुरान् श्लोकानिमानुत्तमान्
ये शृण्वन्ति पठन्ति च प्रतिदिनं तेऽघौघविध्वंसिनः।
श्रीमन्तो बहुपुत्रपौत्रसहिता भुक्त्वेह भोगाँश्चिरं
भोगान्ते च सदार्चितं सुरगणैर्विष्णोर्लभन्ते पदम् ॥

इति सप्तर्षिरामायणम्। भगवते श्रीरामचन्द्राय नमः।

(श्री श्रीपतिस्वामिप्रदत्त एवं श्री पं० योगदत्त झा महिषी, सहरसा, बिहार के सौजन्य से प्राप्त—सम्पादक)

कथासार

महर्षि बाल्मीकि-कृत-रामायण में क्रमबद्ध सात काण्ड हैः—बाल, अयोध्या अरण्य, किष्किन्धा, सुन्दर, लंका तथा उत्तर और ये नाम सापेक्ष हैं। प्रस्तुत सकलन-संक्षिप्त बाल्मीकीय रामायण में भी मौलिक कथाभाग को यथासम्भव अव्याहृत रखने का प्रयास किया है, जिसमें कथासार निम्न प्रकार सन्निविष्ट हैः—

बालकाण्ड (पृ० ३–२८)

बाल्मीकि नारद संवाद, बाल्मीकि के आश्रम में ब्रह्मदेव का पदार्पण, ऋष्य-श्रृङ्ग का अयोध्यागमन, अश्वमेध तथा पुत्रेष्टि यज्ञों की तैयारी, अश्वमेध यज्ञ का आरम्भ, देवताओं की विष्णु से रावणवधार्थ प्रार्थना एवं राजा दशरथ के पुत्रत्व ग्रहण करने को विष्णु की स्वीकृति, पायस चरु लिये हुए अग्निका यज्ञकुण्ड से प्रकट होना, पटरानियों का गर्भाधान, श्रीरामादि चारों भाइयों का जन्म, विश्वामित्र का राजा दशरथ से यज्ञरक्षार्थं राम-याचना, मुनिवसिष्ठ के परामर्श से राजा की स्वीकृति, रास्ते में विश्वामित्र से श्रीराम लक्ष्मण को विद्याप्राप्ति, विश्वामित्र द्वारा विविध अस्त्रों की प्राप्ति, सिद्धाश्रम मे सबों का प्रवेश, मुनिका यज्ञारम्भ तथा कुमारों द्वारा उसकी रक्षा, ताड़का एवं सुबाहु प्रभृति राक्षसों का बध तथा यज्ञ की पूर्णाहुति, विश्वामित्र जी के साथ मिथिला जाना, मार्ग में कुश-नाम की कन्याओं का कथाप्रसंग, सगर पुत्रों की कथा, गङ्गावतरण वृत्तान्त, गङ्गा द्वारा सगरपुत्रों का उद्धार, अमृतादि की उत्पत्ति, इन्द्रद्वारा दितिगर्भ की हत्या, विशाला नगरी में प्रवेश, इन्द्र तथा अहल्या को महर्षि गौतम का शाप अहल्या का उद्धार, राम लक्ष्मण सहित विश्वामित्र जी का राजा जनक से मिलना शतानन्दजी का जीवन-वृतान्त वर्णन, ब्रह्मतेज का प्रताप, विश्वामित्रजी को ब्रह्मर्षित्व प्राप्त, राजा जनक की धनुषप्राप्ति का वृत्तान्त, रामके हाथों शिवशरासन भङ्ग, महाराजा जनकका महाराज दशरथ को बुलवाना, महाराजा दशरथ का सदलबल जनकपुर पहुंचना और उनका सोल्लास स्वागत, राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न चारों भाइयों का क्रमसे सीता-ऊर्मिला, मण्डवी तथा श्रुतिकीर्ति चारों बहनों से विवाह सम्पन्न, अयोध्या लौटते समय मार्ग में परशुरामजी का कोप, श्रीराम का परशुराम से विष्णु धनुष लेकर प्रत्यञ्चा चढ़ाना परशुराम का गर्व चूर होना, सदलबल बारात का सकुशल अयोध्या प्रवेश, भरतजी तथा शत्रुघ्न को ननिहाल जाना और श्रीराम की राजधानी में पिताजी के राज्यसञ्चालन में कुशल योगदान देना।

अयोध्याकाण्ड (पृ० २९-१३१)

राम की शासन-प्रणाली से प्रजावर्ग में प्रसन्नता, महाराज दशरथ का राम को युवराज बनाने की अभिलाषा, राजसभा का अनुमोदन, रामाभिषेक की तैयारी, राम को वसिष्ठ का उपदेश, श्रीराम के राज्याभिषेक संवाद से पुरवासियों में उल्लास एवं उत्साह, रामाभिषेक संवाद से मन्थराको संताप, कैकेयी को मन्थरा की दुर्मन्त्रणा, कैकेयी को राम के निर्वासन की घोर चिन्ता, कैकेयी का कोपभवन प्रवेश, राजा के आने पर उनसे दो वरों को माँगना, राम के लिये चौदह वर्ष बनवास और भरत के लिए यौवराज्य, महाराज दशरथ का कैकेयी को पुनः समझाने की चेष्टा करना, महाराज का करुण विलाप, कैकेयी का विषवमन, महर्षिवसिष्ठ का सुमन्त्र को दशरथ के पास भेजना, सुमन्त्र को राम को बुलाने का आदेश, श्रीरामका महाराज दशरथ के निकट पहुँचना, कैकेयी द्वारा श्रीराम को वनवास का निर्देश, श्रीराम की प्रतिज्ञा, संवाद सुन माता कौसल्या का विलाप, रामका अपनी माता तथा लक्ष्मण को समझाना, राम द्वारा भाग्य की प्रबलता का वर्णन, लक्ष्मण का घोर कोप, राम का अपनी माता कौसल्या को ढाढस बँधाना, पुत्र के लिये माता कौसल्या की मंगल कामना, रामका सीता के निकट जाकर समझाना, सीता का रामके साथ वनगमन के लिये आग्रह, श्रीराम का सीता को वनके दुःखों का वर्णन सुनाना, सीताका वनयात्रा में साथ चलने का श्रीराम से फिर भी आग्रह, अन्ततोगत्वा श्रीराम का सीता को साथ चलने की स्वीकृति दे देना, अनेक आनाकानी करने के पश्चात् श्रीराम का लक्ष्मण को भी साथ चलने की अनुमति देना, श्रीराम का दानमहोत्सव, श्रीराम के वनगमन के समाचार से पुरवासियों की व्याकुलता, श्रीराम का महाराज दशरथ को समझाना, कैकेयी को मन्त्री सुमन्त्र की फटकार, उसे (कैकेयी को) वृद्ध मन्त्री सिद्धार्थ का उपदेश, सीता को भी मुनि परिधान पहनाते देख वसिष्ठ जी का कैकेयी पर कुपित होना, पुरवासियों का कैकेयी को धिक्कारना, राम का वनगमन हेतु पितासे आज्ञा मांगना, राम का वनगमन के लिय प्रस्थान और पुरवासियों का अनुगमन, राम के वनगमन से अयोध्या में क्षोभ, राजा दशरथ का विलाप, कौसल्या का रुदन, सुमित्रा का कौसल्या का समझाना, राम से पुरवासियों की प्रार्थना, श्रीराम का विलाप, पुरवासियो को भ्रम में डालना और आगे बढ़ जाना, पुरवासियों का घर लौट जाना, पुरवासिनी स्त्रियों का विलाप, जनपदवासियों की उद्विग्नता, श्रीराम की निषाद राज से भेंट, निषाद और लक्ष्मण का सारी रात जागरण, श्रीराम का गंगा पार करना, रामका भरद्वाज के आश्रम पर पहुँचना, श्रीराम का यमुना पार करना, श्रीराम का चित्रकूट पहुँचना, शृगवेर पुर से सुमन्त्र को अयोध्या लौटना,

सुमन्त्र का महाराज दशरथ को श्रीराम का संदेश सुनाना, महाराज का विलाप, सुमन्त्र कौसल्या को समझाना, कौशल्या का महाराज दशरथ के अपना दुःख सुनाना, महाराज दशरथ कौसल्या को मनाना, राजा दशरथ का कौसल्या को श्रवणकुमार के बध का वृतान्त सुनाना, महाराज दशरथ का देहत्याग, महाराज के देहावसान से रनिवास में हाहाकार, महाराज दशरथ के भौतिक शव को तेल की नाव में रखना, जाबालि द्वारा अराजकता स्थिति का वर्णन, वसिष्ठ जी का भरत के निकट दूत भेजना, ननिहाल से भरत का प्रस्थान, भरत का अयोध्या पहुँचना, सारे समाचार से भरत का सन्ताप, भरत का अपनी माता कैकेयी को धिक्कारना एवं खरी खोटी सुनाना, माता कौसल्या के सामने भरत की शपथ, महाराज का दाहसंस्कार, भरत शत्रुघ्न का विलाप, शत्रुघ्न का मन्थरा को पीटना, भरत से मन्त्रियों का अनुरोध (राज्य ग्रहण करने का) ठुकराना, शत्रुघ्न का भरत को सभा में रामके मनाने हेतु सदलबदल वनगमन का निर्णय, भरत की वनयात्रा, भरत के समीप निषादराज का आगमन और उनसे भेंट, निषाद का भरत की राम का वृत्तान्त बताना, भरत का रामकी पर्णशय्या देखना, भरत का गंगा पारकर महर्षि भरद्वाज के आश्रमपर निवास, मुनिद्वारा भरत का अभूतपूर्व स्वागत सत्कार, भरत का मुनि से बिदा माँगना, भरत को चित्रकूट वन का रास्ता बताना, भरत का चित्रकूट पहुँचना, भरत को देखकर लक्ष्मण का कोपाग्नि भड़कना, राम का भरत के गुणों को प्रशंसा करना, भरत द्वारा चित्रकूट में श्रीराम की खोज, भरत का राम से मिलन, रामका भरत से राजनीति सहित विविध भाँति के प्रश्न, राम का भरत द्वारा पिता का मरण सुनाना, श्रीराम का मृतपिता को जलाञ्जलि देना श्रीराम का चित्रकूट में गयी हुई माताओं से मिलना, राम और भरत का संवाद राम के वचन, भरत का आग्रहपूर्ण कथन, भरत को रामका समीचीन उत्तर, महर्षि जाबालि के शास्त्र-विरुद्ध वचन, राम द्वारा उसका खण्डन और सत्य का प्रतिपादन, वशिष्ठ का राम को वश परम्परा नीति का प्रतिपादन, राम की अडिग निष्ठा, भरत को राम का उपदेश, राम का भरत को अपनी चरणपादुका देना, भरत का रामपादुका को अपने माथे पर चढ़ाना, भरत का अयोध्या जी लौटना, रास्ते में भरद्वाज से भेंट, भरत का वनसे लौटकर नन्दीग्राम में निवास करना, रामका मुनियों के द्वारा खरादि राक्षसों का अत्याचार सुनना, ऋषिपत्नी अनसूया द्वारा पतिव्रत धर्म की प्रशंसा, अनसूया से सीता का दिव्यालंकार एवं अङ्गरागादि प्राप्त तथा राम का दण्डकारण्य में प्रवेश ।

अरण्यकाण्ड (पृ० १३१–१९६)

श्रीराम का अनेकानेक महर्षियों से मिलन, राम का विराध से सामना, राम का विराध पर प्रहार, राम लक्ष्मण का बिराध को गड्ढे में गाड़ना, राम का महर्षि

शरभङ्ग से मिलन तथा मुनि का देह त्याग, राम का राक्षसों के वध की प्रतिज्ञा करना, राम का महर्षि सुतीक्ष्ण के आश्रम पर पहुँचना, कुछ काल वहां रह कर मुनि से विदा लेना, सीता का राम को धर्मसम्बन्धी परामर्श देना, श्रीराम का सहर्ष उसे अपनी नीति समझाना, श्रीराम का ऋष्याश्रमों को देखकर सुतीक्ष्णाश्रम में पुनः लौट आना और वहाँ अगस्त्याश्रम जाने की मुनि से अनुमति लेना, अगस्त्याश्रम का वर्णन, राम का अगस्त्याश्रम में प्रवेश और महर्षि द्वारा उनका यथायोग्य स्वागत एवं दिव्यास्त्र समर्पण, श्रीराम का पञ्चवटी गमन, गृध्रराज जटायु से भेंट, पंचवटी में पर्णकुटी का निर्माण, हेमन्त ऋतु का वर्णन, शूर्पणखा का राम के समक्ष कामज हाव-भाव का प्रदर्शन, नाक कान काट कर लक्ष्मण का शूर्पणखा को कुरूप करना, इस सम्वादसे खर का प्रकोप और राम के वधार्थ चौदह हजार दुर्धर्ष राक्षसों का भेजना, तथा उनका राम द्वारा वध, शूर्पणखा का खरको भड़काना, खर द्वारा युद्ध की तैयारी, खर की युद्ध यात्रा के समय विविध अशकुन, सीता को लक्ष्मण के संरक्षण में खोह में भेजना, खर की सेना का राम से सामना, राम द्वारा खर की सेना का विनाश, राम द्वारा दूषण आदि राक्षसों का वध, त्रिशिरा का बध, राम और खर का घोर संग्राम तथा खर का बध, रावण को खरादि के विनाश का समाचार अकम्पन के द्वारा मिलना, शूर्पणखा का भी रावण को समाचार पहुँचाना, शूर्पणखा का अपनी दशा दिखाकर रावण को भड़काना, उसका रावण को सीताहरण का परामर्श देना, रावण का मारीच के आश्रम पर जाना, राम का मारीच से सहायता मांगना, मारीच का रावण का अप्रिय किन्तु हितकारी परामर्श देना, राम को अस्त्रों की महिमा सुनाना, मारीच को प्राण-भय के कारण रावण को सहायता से मुकरना, मृत्युभय दिखा कर मारीच से सहायता स्वीकार कराना, रावण का मारीच से रत्नमय रूप धारण करने का आग्रह करना, मृगरूप धारण कर मारीच का राम के आश्रम पर पहुँचना, सीता का उस स्वर्ण मृग का देखना और मोहग्रस्त हो जाना, लक्ष्मण को शंकाओं का राम द्वारा समाधान, मारीच का श्रीराम को वञ्चित कर दूर ले जाना, आहत होने पर मारीच का 'हा, लक्ष्मण, हा सीते,' राम के स्वर में कहना, शब्द सुनकर सीता का विकल होना और लक्ष्मण को भाई की सहायता में जाने का कहना, वहां से नहीं डिगने पर लक्ष्मण को सीता का कठोर वचन कहना, एतदनन्तर रावण का भिक्षुक रूप में आना और सीता से सत्कृत होना, पुनः सीताको धमका कर अपहरण करना, रावण और जटायु में घोर संग्राम और जटायु को मर्मान्तिक आघात पहुँचना, रावण का सीता को एक वर्ष की अवधि देना, श्रीराम का अपने आश्रम को लौटना, मार्ग में राम का अशकुन देखना, लक्ष्मण का अकेले आते देखकर राम की फटकार,

पर्णकुटी को सूना पाकर राम की व्याकुलता, सीता की खोज, राम का विलाप, राम का दुःख और कोप, लक्ष्मण का राम से कोप त्याग की प्रार्थना, राम का जटायु से मिलना, राम का अपने हाथों जटायु का दाह संस्कार करना, आगे बढ़ने पर राम-लक्ष्मण का कबन्ध द्वारा पकड़ा जाना, राम लक्ष्मण का कबन्ध के हाथ काटना, कबन्ध का राम को अपने शाप का वृत्तान्त बताना, कबन्ध का राम को सुग्रीव से मैत्री करने का परामर्श देना, और सीता की प्राप्ति का उपाय बताना तथा ऋष्यमूक का मार्ग भी निर्देश करना, शबरी से राम की भेंट और उस नारी का देह त्याग तथा राम का पम्पासर पहुँचना।

किष्किन्धाकाण्ड (पृ० १९७–२२६)

श्रीराम द्वारा पम्पासर के निकटस्थ वनप्रदेश एवं स्वयं उस सरोवर का सौन्दर्य वर्णन, उस समय सीता के अभाव से उनका शोकाभिभूत होना, लक्ष्मण द्वारा सान्त्वना मिलना और स्वस्थ होना, ऋष्यमूक के शिखरस्थ सुग्रीवादि वानरों की दृष्टि श्रीराम पर पड़ना और भयविह्वल होना, सुग्रीव की मन्त्रणा और हनुमान् के वस्तुस्थिति जानने हेतु भेजना, हनुमान् का राम के निकट पहुँचना और पाण्डित्य पूर्ण अभिभाषण करना, फिर रामलक्ष्मण को सुग्रीव के पास ले जाकर हनुमान् का दोनों में मित्रता स्थापित करना, सुग्रीव द्वारा सीता का वस्त्राभूषण दिखाना और उन्हें पहचान कर राम का शोकाकुल होना सुग्रीव से राम को आश्वसित होना, सुग्रीव के कष्ट निवारणार्थ राम का बालि के वध की प्रतिज्ञा करना, सुग्रीव का बालि के साथ हुए वैर का वृत्तान्त बताना, सुग्रीव का राम को बालि का बल बताना, राम का सुग्रीव को विश्वास दिलाना, बालिके द्वार पर जाकर सुग्रीव का गर्जन, तारा का बालिको हित की बात बताना और युद्ध विरत करने का प्रयास, बालिका तारा की सलाह को न मानना और मैदान में आडटना, राम द्वारा बालि वध, बालिका राम को फटकारना, राम द्वारा अपने कार्य का समर्थन, बालिके पास तारा का आना और विलाप करना, तारा को हनुमान् का आश्वासन, बालिका राजकीय दाह-संस्कार, सुग्रीव का राज्याभिषेक राम का प्रवर्षण पर्वतपर चातुर्मास निवास, वर्षा का आगमन और राम द्वारा उसका वर्णन, हनुमान् का सुग्रीव को प्रतिज्ञा का स्मरण दिलाना, शरदनन्तर श्रीराम के दुःख के कारण लक्ष्मण का सुग्रीव पर कोप, सुग्रीव को तारा द्वारा लक्ष्मण को शान्त करना, लक्ष्मण का सुग्रीव को परुषवचन कहना, तारा द्वारा लक्ष्मण को आश्वासन, सुग्रीव का लक्ष्मण से अनुरोध, सुग्रीव का वानरी सेना बुलवाना, सुग्रीव का राम के पास जाना, उसी सेना का आगमन, प्रमुख वानरी सेना टोली को प्रत्येक दिशा में भेजना, श्रीराम का हनुमान् को विशेष सन्देश देना, हनुमान्

आदि के द्वारा विविध वनों में सीता की खोज, हनुमान् आदि का ऋक्ष बिल में प्रवेश, स्वयंप्रभा द्वारा वानरों का आतिथ्य, उसीके द्वारा उनका बिल से निष्कासन, निर्धारित समय बीत जाने के कारण अङ्गद का दुःखी होना, हनुमान् की गुट को फोड़ना, वानरों का उपवास, वानरों से सम्पाति के प्रश्न, वानरों का सम्पाति को जटायु के मरण का समाचार सुनना, सम्पाति का सूर्य के पास पहुँचने की कहानी सुनाकर मुनि द्वारा सम्पाति के भविष्य कथन, सम्पाति के पुनः पंख निकलना, समुद्र लंघन विषयक मन्त्रणा, वानरों का अपना अपना बल बताना, जाम्बवान् का हनुमान् का समुद्र लंघन हेतु प्रोत्साहित करना और हनुमान् का समुद्र लंघन हेतु उद्यत होना।

सुन्दरकाण्ड (पृ० २७७-२५५)

हनुमान् के वायुमार्ग से जाते देख उनके विरामार्थ मैनाक को समुद्रतल से ऊपर उठना, सुरसा द्वारा हनुमान् के बुद्धिबल की परीक्षा और शुभकामना, सिंहिका का बध, हनुमान का लङ्का पहुँचना, कपिवर का रात्रि के आगमन की प्रतीक्षा करना, रात में लङ्का प्रवेश करते ही लङ्किनी का अवरोध और उस पर हनुमान् की विजयप्राप्ति, उसके पश्चात् प्रत्येक स्थान में जाकर सीता की खोज करना, रावण के घर में सीता का अन्वेषण पुष्पकविमान को देखना, इसी क्रम में रावण के भरे पूरे रनिवास को भी देखना, हनुमान् का मन्दोदरी को देखना, रावण की मधुशाला में सीता की खोज, सीता को नहीं पाने से हनुमान् का विषाद और मानसिक क्लेश, अन्त में अशोकवाटिका में सीता की खोज, हनुमान् को सीता की प्राप्ति, उनकी दशा देखकर कपिवर का पछतावा, अशोकवाटिका में रावणका सीता से प्रेम प्रार्थना, सीता का रावण को तृणवत् समझना, रावण का सीता को दो मास की अवधि देना, सीता को राक्षसियों का फुसलाना तथा धमकाना, सीता का सन्ताप, सीता द्वारा प्राण त्याग का निश्चय, त्रिजटा का स्वप्न सुनाना, अन्य साधन के भाव में केशपाश से ही सीता का फंसरी लगाने का निश्चय, इतने में सीता को शुभ-शकुन दृष्टिगोचर होना, हनुमान् का कर्तव्य निर्धारण, हनुमान् का सीता को रामचरित्र श्रवण करना, सीता का स्वप्नादितर्क, हनुमान् का पेड़ से उतर कर सीता को प्रणाम करना, दोनों में संवाद, सीता को हनुमान् के प्रति रावण सम्बन्धी शङ्काओं का का निवृत्त होना, हनुमान् का सीता के मन में विश्वास उत्पन्न करना, हनुमान् द्वारा सीता को राम की अँगूठी देना, हनुमान् द्वारा सीता को साथ लाने में अनौचित्य, सीता का हनुमान् को जयन्त का वृत्तान्त बताना, सीता का हनुमान् को चूडामणि देना, सीता का हनुमान् को लौटाने की अनुमति देना, हनुमान् द्वारा प्रमद वन का विनाश, हनुमान् द्वारा रावण के किंकरी सेना का संहार तथा जाम्बुमाली, अमात्य पुत्र, पञ्चसेनापति

कथा, अक्षयकुमारादि का सेनासहित संहार, अन्त में हनुमान् पर मेघनाद का आक्रमण और ब्रह्मास्त्र द्वारा उनको बाँध कर रावण के दरबार में लाना, रावण का प्रताप देख हनुमान् को आश्चर्य, सेनापति प्रहस्त के प्रश्न हनुमान् से, रावण को दूतबध से विरत करना, पूँछ में आग लगाने की आज्ञा देना, पर हनुमान् के लिये अग्नि का शीतल होना, हनुमान् द्वारा लंका दहन, उन्हें सीता दहन का भ्रम होना, भ्रम दूर करने के हेतु हनुमान् को सीता से मिलने जाना और वापस लौटने की आज्ञा माँगना, वहां से हनुमान् की उड़ान और समुद्र पार आकर साथियों से मिलना तथा सारा वृत्तान्त कह सुनाना, आगे की कामों की चिन्ता तथा अङ्गद जाम्बवान् संवाद. वहाँ से चलकर मधुवन आना और अंगद की आज्ञा से मधुपान करना, दधिमुख के रोकने पर उसकी दुर्दशा करना, दधिमुख के द्वारा हनुमानादि के आगमन के समाचार से सुग्रीव को प्रसन्नता, हनुमान् आदि का सुग्रीव के पास पहुँचना, हनुमान् का सीता सम्बन्धी राम को शुभ समाचार सुनाना तथा सीता की चूडामणि देना, सीता के विषय में राम के प्रश्न, हनुमान् का सीता का सन्देश और सीता को आश्वासन देने की बात बताना।

लङ्काकाण्ड (पृष्ठ २५३ से ३५७ तक)

श्रीराम द्वारा हनुमान् की भूरि भूरि प्रशंसा, सुग्रीव द्वारा श्रीराम को प्रोत्साहन, हनुमान् द्वारा लंका की किलेबन्दी का वर्णन, श्रीराम का उत्साह तथा उद्योग, श्रीराम की मन्त्रणा, रावण की सभा में उसके सचिवों के वक्तव्य, प्रहस्त आदि के कथन और विभीषण की आलोचना एवं हितकारक सलाह, रावण की मन्त्रणा का द्वितीय अधिवेशन, कुम्भकर्ण के विचार, महापार्श्व के विचार की रावण द्वारा सराहना, मेघनाद और विभीषण का विवाद, और विभीषण की फटकार, रावण से अपमानित हो विभीषण का राम की शरण में जाना, सुग्रीवादि की तर्कना के बावजूद श्रीराम का विभीषण को अपनाने का निश्चय, विभीषण के परामर्शानुसार समुद्र के किनारे राम का कुशास्तरण पर बैठ समुद्र से रास्ता मांगना, रावण द्वारा सुग्रीव को फोड़ने का उद्योग, समुद्र का क्षोभ नल द्वारा समुद्र पर सेतुबन्ध, सेना का समुद्र पार करना और इकट्ठा होना, रावण का रामकी सेना में शुकसारण को भेद लेने के लिये भेजना, रावण का मर्कट सेना का बल ज्ञात करना, सारण का प्रमुख बानरों का बल-वर्णन करना, रावण का शार्दूल आदि गुप्तचरों को रामदल में भेजना, शार्दूल द्वारा रावण को राम सेना के बल की जानकारी पाना, विद्युज्जिह्व राक्षस द्वारा माया प्रयोग, सुग्रीवका रावणको नीचा दिखा पुनः रामके पास लौट जाना, राम का अंगदको दूत बनाकर रावण के पास भेजना, युद्धारम्भ, वानरों और राक्षसों के बीच द्वन्द्व युद्ध

रात्रियुद्ध, मेघनाद द्वारा वानरों को घायल होना और रामलक्ष्मण को नागपाश में बाँधना, सुग्रीवादिका शोकाकुल होना, रावण का त्रिजटा को आदेश सीता को युद्ध-भूमि में लेजाकर मृत पतिको दिखा लाने के लिये, लक्ष्मण को मूच्छित देख रामका विलाप, गरुड द्वारा राम लक्ष्मणादि को नागपाश से मोक्ष, रावण द्वारा धूम्राक्ष को रणभूमि में भेजना और हनुमान् द्वारा उसका बध, वज्रदंष्ट्र का अंगद से घोर युद्ध और उनके हाथ मरण, अकम्पन द्वारा वानरी सेना का कदन और हनुमान् द्वारा उसका बध, सेनापति प्रहस्त द्वारा प्रचंण्ड संग्राम पर वानर सेनापति नील द्वारा उसका निधन, रावण को स्वयं युद्धभूमि में जाना और परास्त होकर लौटना और प्रलाप करना, राक्षसां का कुम्भकर्ण को जागना उसे रावण के पास लाना, कुम्भ कर्ण से रावण की प्रार्थना और कुम्भकर्ण की फटकार, फिर कुम्भकर्ण का युद्ध के लिये उद्यत होना और रावण को आश्वस्त करना, घोर युद्ध मचाने के पश्चात् राम द्वारा उसका वध, उसके वध से रावणको मर्मान्तिक मनस्ताप, नरान्तक-देवान्तक-अतिकाय आदिपुत्रों के मारे जाने से रावण को पुत्र शोक, मेघनाद का माया युद्ध, राम सेना का घोर कदन एवं आहत होना, हनुमान् द्वारा हिमालय से और औषधिपर्वत लाना और सबो का नीरुज होना, राम द्वारा मकराक्ष का वध, मेघनाद और मायामयी सीता का वध, यह देखकर हनुमान् का युद्ध रोकना, श्रीराम को संवाद देना, रामको शोकाकुल होना, विभीषण द्वारा सच्ची वस्तुस्थिति का ज्ञान, वानरीसेना को मोहमें डाल मेघनाद का निकुम्भिला पहुँचना—पूर्णाहुति के लिये, विभीषण के परमार्शानुसार प्रमुख योद्धाओं सहित लक्ष्मण का निकुम्भिला पहुँचना और पूर्णाहुति सम्पन्न होने के पूर्व मेघनाद पर धावा बोल देना, घोर संग्राम के पश्चात् लक्ष्मण के दिव्यबाण से मेघनाद का वध, आहत लक्ष्मण को हनुमान् विभीषण के सहारे रामके निकट पहुँचना और शल्यचिकित्सा से नीरुज मेघनाद वध से राम सेना में हर्षोल्लास, पुत्रबध से रावण को अपार शोक, सीता वध के लिये रावण का उद्यत होना, पर महापार्श्व द्वारा इस विचार को त्याग देनेका परामर्श, रावण को स्वय युद्ध के लिये समर भूमि में जाना और गन्धर्वास्त्र का प्रयोग करना पर राम द्वारा विफल होना, रावण का कोप, एक एक कर ससैन्य विरुपाक्ष महोदर तथा महापार्श्व का समरांगण जाना और सदाके लिये सो जाना, रावण का लक्ष्मण पर शक्ति प्रयोग, औषधि द्वारा लक्ष्मण का विशल्य होना, राम का रावण के शूल को नष्ट करना, सारथि द्वारा रावण को युद्धभूमि से हटाना और इसके लिये सारथी को डाँटना, राम रावण का द्वरथ घोर युद्ध, मातली के स्मरण दिलाने पर राम का रावण पर ऐन्द्रास्त्र प्रयोग कर बधकर डालना, रावण के राजमहल में शोक समुद्र का उमड़ना रावण का राजकीय विधि से दाह संस्कार, लङ्का में विभीषण का औपचारिक अभिषेक, हनुमान् का सीता को

रामविजय का शुभ समाचार सुनाना, सीता का रामदर्शन पाना, राम द्वारा सीता तिरस्कार, सीता का अग्नि प्रवेश, ब्रह्मा आदि देवताओं का वहाँ आना और राम की स्तुति करना, सीता को लेकर अग्निदेव का वहाँ पहुँचना और उसकी विशुद्धता की साक्षी देना, देवताओं के कथन पर श्रीराम का सीता को स्वीकार करना, दिवंगत राजा दशरथ का भी उन देवताओं के साथ वहाँ आना और राम लक्ष्मण सीता का आशीर्वाद देना, राम को इन्द्र का वरदान, राम के सम्मुख विभीषण द्वारा पुष्पक-विमान प्रस्तुत करना और उस पर सवार हो अयोध्या को प्रस्थान करना, लङ्का से अयोध्या लौटते समय मार्गवर्णन, भरद्वाज के आश्रम पहुँचने पर मुनि द्वारा उनका यथोचित स्वागत, हनुमान् का सभी के आगमन का समाचार, नन्दिग्राम जाकर भरत को सुनाना, हनुमान् भरत संवाद, राम और भरत का मिलाप, राम की शोभा यात्रा और उनका यथाविधि राज्याभिषेक।

उत्तरकाण्ड (पृ० ३१८, ३९८)

राम मिलन के लिये अगस्त्यादि ऋषियों का अयोध्या पहुँचना, समुचित अभिवादनानन्तर श्रीराम का प्रश्न और महर्षि अगस्त्य का यथायोग उत्तर, कुबेर का लोकपाल पद और लङ्का प्राप्ति, माली राक्षस का वध और सुमालि आदि का निग्रह, रावण आदि की उत्पत्ति, रावण आदि की तपस्या और ब्रह्मा द्वारा वर प्राप्ति रावण की लङ्का प्राप्ति, रावण आदि का विवाह, रावण द्वारा कुवेर के दूत का वध, यक्षों और राक्षसों क तुमुल युद्ध और रावण का कुबेर से पुष्पक विमान छीन लेना, रावण का 'रावण' नाम पाना, रावण को वेदवती शाप, राजा मरुत्त पर विजय, अनरण्य पर आक्रमण और रावण द्वारा उनका वध, मरते समय उनका रावण को शाप, यम रावण का युद्ध और रावण की विजय, रावण द्वारा वरुण पर विजय, खर और शूर्पणखा का दण्डकारण्य निवास, रावण को नलकूबर का शाप, इन्द्र के साथ युद्ध में सावित्र के हाथों सुमालो (रावण के नाना) का वध, मेघनाद का इन्द्र को बन्दी बनाना, इन्द्र के पराजय का कारण, रावण का सहस्रार्जुन पर आक्रमण और नर्मदा स्नान, सहस्रार्जुन द्वारा रावण का पकड़ा जाना और बन्दी बनना, फिर पुलस्त्य ऋषि की मध्यस्थता से छुटकारा पाना, वालि पर रावण की चढ़ाई और उसका बन्दी बनना, बाद में वालि से मैत्री कर लेना, हनुमान् की उत्पत्ति का वृत्तान्त, हनुमान् का इन्द्रवज्र से आहत होना और इससे वायु का कोप, ब्रह्मा आदि प्रमुख देवताओं द्वारा हनुमान् को वर प्राप्ति, पुरवासियों द्वारा राम का अभिनन्दन और अभिषेक में आये हुए जनकादि राजाओं की विदाई, श्रीराम का हनुमान् आदि वानरों को दान-मान आदि से प्रसन्न करना, हनुमान् की प्रार्थना, राम का पुनः

पुष्पक विमान को वापस लौटाना, राम सीता का विहार, राम का भद्र से सीता सम्बन्धी अपनी बदनामी का समाचार सुनना, राम का लक्ष्मण आदि भाइयों को बुलवाना, लक्ष्मण को वनमें सीता को छोड़ आने की आज्ञा देना, लक्ष्मण का सीता के साथ गंगातट पर पहुँचना और गंगा पार कर सीता को राम का आदेश सुना देना, लक्ष्मण द्वारा सीता का त्याग, सीता का वाल्मीकि के आश्रम में प्रवेश, सुमन्त्र का राम को सीता के वियोग का रहस्य बताना, राम की चिन्ता और लक्ष्मण द्वारा आश्वासन, राजा नृग को शापप्राप्त होने का वृत्तान्त, राजा-निमि और वसिष्ठ का परस्पर एक दूसरे को शाप देना वशिष्ठ की मैत्रावरुणित्व प्राप्ति, राजा निमिको निमिषत्व प्राप्ति, शुक्राचार्य का राजा ययाति को शाप देना और ययाति को उसे सह लेना, राजा पुरु का राज्याभिषेक, च्यवनादि ऋषियों का राम दरबार में आगमन, राम से च्यवनादि की लवणासुर से रक्षा करने की प्रार्थना लवणासुर के वधार्थ राम द्वारा शत्रुघ्न से प्रार्थना, राम का शत्रुघ्न को लवणासुर के वध का उपाय बताना, शत्रुघ्न का प्रस्थान, शत्रुघ्न का वाल्मीकि आश्रम में पड़ाव डालना और उसी रात लवकुश का जन्म, यथानिर्देश शत्रुघ्न का लवणासुरके भवन को घेर लेना उसके आने पर उससे शत्रुघ्न का विवाद और लवण का वध, शत्रुघ्न का मधु-पुरी बसना, वाल्मीकि द्वारा शत्रुघ्न की प्रशंसा, बारह वर्ष बाद राम शत्रुघ्न मिलन, राम के द्वार पर ब्राह्मण का विलाप और राम का उसके बेटे को जीवन दान देना, निजका मांसाहारी स्वर्गीय प्राणी की कथा अगस्त्य जी द्वारा वर्णन, राम का अगस्त्य से दिव्याभूषण पाना, राजदण्ड की कथा का वर्णन, राम का अयोध्या लौटना, रामका राजसूय यज्ञ की इच्छा, वृत्रासुर की तपस्या और इन्द्र द्वारा उसका वध का प्रसंग, इन्द्र का ब्रह्महत्या से अश्वमेधयज्ञ द्वारा उद्धार, राजा इल की स्त्रीत्व से छुटकारा, अश्वमेध ही द्वारा, रामके अश्वमेध यज्ञकी तैयारी, अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा छूटना, वाल्मीकि का यज्ञ भूमि में कुश-लव द्वारा रामायण गान, रामका वाल्मीकि के ढिग दूत भेजना, वाल्मीकि का रामको सीता की शुद्धि विषय में विश्वास दिलाना, सीता का रसातल प्रवेश, राम के कोप की शान्ति कौसल्या आदि माताओं का स्वर्गारोहण भरत की गन्धर्व-विजय यात्रा, विजय प्राप्त कर गन्धर्व देश में भरतात्मज तक्ष और पुष्कल का राज्याभिषेक, लक्ष्मण तनय अंगद और चित्रकेतुका अभिषेक, राम के पास काल का आगमन, काल का राम को ब्रह्मा का आदश सुनाना, उसी समय दुर्वासा ऋषि का आगमन, राम द्वारा लक्ष्मण का त्याग, कुश-लव का राज्याभिषेक, हनुमान्-विभीषण आदि को राम की आज्ञा, राम को महाप्रस्थान, अनुयायियों सहित रामका स्वर्गारोहण तथा रामायण श्रवण फल ।

जीवन-परिचय

प्रस्तुत ग्रन्थ के संस्कर्ता बाबू श्री भागवत प्रसाद सिंह का जन्म भूमिहार ब्राह्मण कुलके एक किसान परिवार में फसली सन् १३०७ कार्तिक शुक्ल द्वितीया मंगलवार को हुआ। इनके पिता का नाम बाबू दरबारी सिंह, और माता का नाम रामवती देवी था। इनके पितामह जीतन सिंह और प्रपितामह हरदयाल सिंह जी परम साधु स्वभाव के महात्मा थे। वे सदैव सन्तोषधन से सन्तुष्ट रहा करते थे। श्री सिंह जी का जन्मस्थान ग्राम बरौनी पो० बरौनी डयौढ़ी, जि० बेगूसराय, (विहार) है। भागवत बाबू बाल्यकाल से ही जनसमक्ष बड़े कुशाग्र बुद्धि उदीयमान प्रतीत होने लगे। आपने सन् १९१८ ई० की मिडिल परीक्षा में भागलपुर डिवीजन में सर्वोपरि लब्धांक पाया। प्राकृतिक अध्ययन में तो संपूर्ण विहार में प्रथम आये। उस समय लोक शिक्षाविभाग ने आपको स्वर्णपदक प्रदान किया। सन् १९२१ ई० के आरंभ में अपने ३० उत्तमोत्तम सह पाठियों के साथ राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी जी के साथ असहयोग आन्दोलन में भाग ले लिये। इसलिये शिक्षा में कई वर्षों तक व्यवधान हो गया। सन् १९२३ ई० में इन्होंने मैट्रिक परीक्षा प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण की। सन् १९२७ ई० से ५४ ई० तक अर्थात् लगातार २६ वर्षों तक सहायक शिक्षक और २ वर्ष प्रधानाध्यापक पद पर बड़ी सफलता से कार्य किया। सन् १९५४ ई० में अध्यापन कार्य में बहुत बन्धन जान त्यागपत्र दे दिये। सन् १९५५ ई०में विहार सरकार ने सब जमींदारों से जमींदारी ले ली। इनकी भी छोटी सी जमीन्दारी थी, उसी में वह चली गयी। सन् १९५६ ई० में इनके पिता जी का स्वर्गवास हो गया। सन् १९५८ई०में गंगाजी ने लगभग २५ बीघे जमीन अपने गर्भमें कर लिया। बड़े साधारण व्यक्ति के समान रहते हुए ये अपने संकटोंको झेलते हुए कभी भी अपने कर्तव्य-पथसे विचलित नहीं हुए। श्री सिंह जी में सबसे अधिक विशेषता यह है कि इन्होंने किसी एक विषय का आदि से अन्त तक नहीं पढ़ा, किन्तु हिन्दी, संस्कृत, उरदू, फारसी, अंग्रेजी भाषायें, गणित, इतिहास, भूगोलादि शाखाओं के साथ-साथ व्यावहारिक आवश्यक सभी कामों का अनुभव अद्भुत रखे हैं। ये निरन्तर स्वतन्त्ररूपसे विद्याध्ययन ही करते रहना पसन्द करते हैं। पातञ्जलयोगसूत्रको कण्ठ कर उसके अनुसार अपना जीवन तथा साथियों का भी वैसा ही जीवन बिताने पर जोर दिया करते हैं। ये 'सादा जीवन, उच्च विचार' और "ओते पैर पसारिये जेती लम्बी ठौर" इस सूक्ति को व्यावहारिक

रूप में अमल किया करते हैं। इनके संपर्क में जो विद्वान् समक्ष में आते हैं, उन्हें इनके मुख से 'अध्यात्मरामायण' 'महाभारत' श्रीमद्भागवत, भगवद्गीता' 'योगसूत्र' 'वाल्मीकिरामायण' एवं उपनिषदों के साथ-साथ अंग्रेजी के अच्छे-अच्छे मुहावरों के साथ तुलनात्मक विचारधाराको सुन कर बहुत ही आश्चर्य चकित होना पड़ता है। श्री सिंहजी अपने जीवन के बारे में सदैव परिचय दिया करते हैं कि—

'Jack in all Arts But Master of None."

इन्होंने अपने सफल परिश्रम से 'संक्षिप्त वाल्मीकिरामायण' का संकलन कर जनता का महान उपकार किया है। इनके एकमात्र सुपुत्र श्रीबाबू देवकीनन्दन सिंह शिक्षा विभाग में निरीक्षक पद पर कार्य कर रहे हैं। ये भी पिता के तुल्य विद्याव्यसन में ही अपना अधिक समय का सदुपयोग किया करते हैं।

श्रीसिंह जीने महाभारत का संक्षिप्त रूप का संकलन किया है। यदि इनका संक्षिप्त वाल्मीकीयरामायणसे लोगोंको लाभ हुआ तो इनकी इतनी लगनशीलता है कि जनता को लाभ पहुँचाने के लिए ये 'संक्षिप्त महाभारत' को भी प्रकाशित करनेमें उत्साहित अवश्य होंगे। बरौनी गाँव में गृहस्थाश्रम में रहकर इतने अध्यवसायी ज्ञानपिपासु दूसरा कोई देखने में नही आ रहा है। भगवान् ऐसे पुरुष को शतायु अवश्य करें।

वाल्मीकीय रामायण की सूक्तियाँ

(१) धर्म

धर्मादर्थः प्रभवति धर्मात् प्रभवते सुखम्।
धर्मेण लभते सर्वं धर्मसारमिदं जगत् ॥ (अरण्य काण्ड)

धर्म से ही धन, सुख तथा सब कुछ प्राप्त होता है, इस संसार में धर्म ही सार वस्तु है।

(२) अधर्म

यद्यधर्मो न बलवान् स्यादयं राक्षसेश्वरः।
स्यादयं सुरलोकस्य सशक्रस्याऽपि रक्षिता ॥ (सुन्दर काण्ड)

हा! यह रावण, कहीं ऐसा पापाचारी न होता, तो यह राक्षसराज इन्द्र सहित देवताओं का भी रक्षक (राजा) हो सकता था।

(३) सत्य

सत्यमेवेश्वरो लोके सत्ये धर्मः सदाश्रितः।
सत्यमूलानि सर्वाणि सत्यान्नास्ति परं पदम् ॥ (अयो० काण्ड)

सत्य ही संसार में ईश्वर है, धर्म भी सत्य के ही आश्रित है, सत्य ही समस्त सम्पत्तियों का मूल है, सत्य से बढ़कर और कुछ नहीं है।

(४) कर्म-फल

यदाचरति कल्याणि! शुभं वा यदि वाऽशुभम्।
तदेव लभते भद्रे! कर्त्ता कर्मजमात्मनः ॥ (अयो० काण्ड)

महाराज दशरथ कौशल्या जी से कहते हैं कि हे कल्याणि! मनुष्य जैसा भी अच्छा बुरा कर्म करता है, उसे वैसा ही फल मिलता है। कर्त्ता को अपने किये हुए कर्म का फल अवश्य भोगना पड़ता है।

अविज्ञाय फलं यो हि कर्म त्वेवानुधावति।
स शोचेत् फलवेलायां यथा किंशुकसेवकः ॥ (अयोध्या काण्ड)

जो मनुष्य किसी काम के परिणाम पर विचार किये बिना ही आँख मूँद कर उसे कर लेता है, बाद में वह फलप्राप्ति के समय पलाश वृक्ष की सेवा करने वाले की तरह पश्चात्ताप करता है, उसका काम सफल नहीं होता है।

(५) सफल जीवन

सुजीवं नित्यशस्तस्य यः परैरुपजीव्यते।
राम! तस्य तु दुर्जीवं यः परानुपजीवति ॥ (अयोध्या काण्ड)

जिसके आश्रय में अनेक व्यक्ति जीते हैं, उसीका जीवन सार्थक है। जो दूसरे के सहारे जीता हैं, उस असमथ परावलम्बित का जीना न जीने के समान है।

(६) सुख

'न सुखाल्लभते सुखम्' 'दुर्लभं हि सदा सुखम्'। (अ०एवंअ०काण्ड)

सुख से सुख की वृद्धि नहीं होती, उसके लिए कष्ट उठाना पड़ता है। "किसी का भी सदा सुखी बना रहना दुर्लभ है।

सुदुःखं शयितः पूर्वं प्राप्येद सुखमुत्तमम्।
प्राप्तकालं न जानोते विश्वामित्रो यथा मुनिः॥ (किष्किन्धा काण्ड)

किसी को जब बहुत दिनों तक अत्यधिक दुःख भोगने के बाद महान् सुख मिलता है, तो उसे विश्वामित्र मुनि की तरह समय का ज्ञान नहीं रहता। अर्थात् सुख का अधिक समय भी थोड़ा ही जान पड़ता है।

(७) मैत्री

उपकारफलं मित्रमपकारोऽरिलक्षणम्। (किष्किन्धा काण्ड)

उपकार करना मित्रता का लक्षण है और अपकार करना शत्रुता का।

सर्वथा सुकरं मित्रं दुष्करं प्रतिपालनम्॥ (किष्किन्धा काण्ड)

मित्रता करना सहज है, लेकिन उसको निभाना कठिन है।

स सुहृद् यो विपन्नार्थं दीनमभ्युपपद्यते।
स बन्धुर्योऽपनीतेषु साहाय्यायोपकल्पते॥ (युद्धकाण्ड)

सुहृद् वही है जो विपत्ति-ग्रस्त दीन-हीन मित्र का साथ दे और सच्चा बंधु वही हैं जो अपने कुमार्गगामी बन्धु को भी सहायता करे।

'दृश्यमाने भवेत् प्रीतिः सौहृदं नास्त्यपश्यतः।' (सुन्दरकाण्ड)

सभी का ऐसा स्वभाव होता है कि सामने रहने पर प्रीति बनी रहती है, किन्तु परोक्ष में उतना सौहार्द नहीं रह पाता।

वसेत् सह सपत्नेन क्रुद्धेनाशीविषेण च।
न तु मित्रप्रवादेन संवसेच्छत्रुसेविना॥ (युद्धकाण्ड)

शत्रु और क्रुद्ध महाविषधर सर्प के साथ भले ही रहना पड़े, किन्तु ऐसे मनुष्य के साथ कभी रहने का अवसर प्राप्त न हो, जो ऊपर से मित्र कहलाता हो, पर भीतर भीतर शत्रु का हित साधन करता हो।

(८) अपना और पराया

गुणवान् वा परजनः स्वजनो निर्गुणोऽपि।
निर्गुणः स्वजनः श्रेयान् यः परः एव सः॥ (युद्धकाण्ड)

पराया मनुष्य भले ही गुणवान् हो तथा स्वजन सर्वथा गुणहीन ही क्यों न हो लेकिन गुणी परिजन से स्वजन ही अच्छा होता है। अपना तो अपना है और पराया तो पराया ही रहता है।

(९) उत्साह

उत्साहो बलवानार्य[1] नास्त्युत्साहात् परं बलम्।
सोत्साहस्य हि लोकेषु न किञ्चिदपि दुर्लभम्॥ (किष्किन्धा-काण्ड)

लक्ष्मण श्रीरामजी से कहते हैं—आर्य ! उत्साह बड़ा बलवान् होता है, उत्साह से बढ़कर कोई बल नहीं है। उत्साही पुरुषके लिये संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं है।

अनिर्वेदो हि सततं सर्वार्थेषु प्रवर्तकः।
करोति सफलं जन्तोः कर्म यच्च करोति सः॥ (सुन्दर-काण्ड)

उत्साही मनुष्य सदा सब कार्यों में प्रवृत्त रहता है। उत्साह ही जीवन के प्रत्येक कार्य को सफल बनाता।

(१०) शोक

यो विषादं प्रसहते विक्रमे समुपस्थिते।
तेजसा तस्य हीनस्य पुरुषार्थो न सिद्धयति॥ (किष्किधाकाण्ड)

जो मनुष्य अपने पराक्रम दिखाने के अवसर पर विषाद (शोक)-ग्रस्त होता है, उसका अपना आत्मतेज नष्ट हो जाता है और पुरुषार्थ सिद्ध नहीं होता।

निरुत्साहस्य दीनस्य शोकपर्याकुलात्मनः।
सर्वार्था व्यवसीदन्ति व्यसनं चाधिगच्छति॥ (युद्धकाण्ड)

उत्साहहीन, दीन और शोकाकुल मनुष्य के सभी काम बिगड़ जाते हैं, वह घोर विपत्ति में फँस जाता है।

'ये शोकमनुवर्त्तन्ते न तेषां विद्यते सुखम्'। (किष्किन्धाकाण्ड)

शोकग्रस्त मनुष्यों को कभी सुख नहीं मिलता।

---

(१) 'आर्य' की परिभाषा निम्नोक्त रूप में जानना चाहिये—

कर्त्तव्यमाचरन् कार्यमकर्त्तव्यमनाचरन्।
तिष्ठति प्रकृताचारे यः स आर्य इति स्मृतः॥ (वशिष्ठस्मृति)

शान्तस्तितिक्षुर्दान्तश्च सत्यवादी जितेन्द्रियः।
दाता दयालुर्नम्रश्च आर्यः स्यादष्टभिर्गुणैः॥ (महाभारत)

(११) क्रोध

क्रुद्धः पापं न कुर्यात् कः क्रुद्धो हन्याद् गुरूनपि ।
क्रुद्धः परुषया वाचा नरः साधूनधिक्षिपेत् ॥
वाच्यावाच्यं प्रकुपितो न विजानाति कर्हिचित् ।
नाकार्यमस्ति क्रुद्धस्य नावाच्यं विद्यते क्वचित् ॥ (सुन्दरकाण्ड)

क्रोध के वशवर्ती लोग क्या नहीं कर डालते । क्रोध के आवेश में लोग अपने पूज्यों—माता, पिता एवं आचार्यों को भी मार डालते हैं और क्रोध से अभिभूतलोग सज्जनों को भी कुवाक्य कह बैठते हैं ।

क्रोध की दशा में मनुष्यों को कहने और न कहने योग्य बातों का विवेक नहीं रहता । वह मनुष्य कुछ भी कर सकता है और कुछ भी बक सकता है । उसके लिए कुछ भी अकार्य और अवाच्य नहीं है ।

(१२) लोकनीति

नचातिप्रणयः कार्यो कर्त्तव्योऽप्रणयश्च ते ।
उभयं हि महान् दोषस्तस्मादन्तरदृग्भव ॥ (किष्किन्धा-काण्ड)

मृत्युपूर्व वालीने अपने पुत्र अंगद को यह अन्तिम उपदेश दिया था कि तुम किसीसे अधिक प्रेम या अधिक दैन्य न करना, क्योंकि दोनों ही अत्यन्त अनिष्ट-कारक होते हैं, सदा मध्यम मार्ग का ही अवलम्बन करना ।

(१३) स्नेहाधिक्य हानिकारक

'अतिस्नेहपरिष्वङ्गाद् वर्त्तिरार्द्रोऽपि दह्यते । (किष्किन्धा-काण्ड)

वाली ने आगे कहा—पुत्र ! अत्यन्त स्नेहयुक्त होने से दीपक की बत्ती भी जल जाती है । यही दशा मनुष्य की भी है । स्नेहयुक्त = तैलयुक्त, प्रेमयुक्त ।

(१४) दण्डनीति

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः ।
उत्पथं प्रतिपन्नस्य कार्यं भवति शासनम् ॥ (सुन्दर-काण्ड)

यदि गुरु भी प्रमादवश कर्त्तव्य का विचार त्याग दे और कुमार्गगामी हो जाय तो उसे भी शासित करना आवश्यक है ।

(१५) निर्दोषी व्यक्ति अदण्डय

यानि मिथ्याभिशस्तानां पतन्त्यश्रूणि राघव ! ।
तानि पुत्रपशून् घ्नन्ति प्रीत्यर्थमनुशासतः ॥ (अयोध्याकाण्ड)

मिथ्या अपराधों के लिये दण्ड नहीं मिलना चाहिये, क्योंकि निर्दोष व्यक्तियों के नेत्रों से जो अश्रु गिरते हैं, वे स्वेच्छाचारी शासक का सर्वनाश कर डालते हैं।

(१६) राजधर्म

पातकं वा सदोषं वा कर्त्तव्यं रक्षसा सदा।
राज्यभार-नियुक्तानामेष धर्मः सनातनः ॥ (बालकाण्ड)

जिसके कन्धों पर शासन का भार हो, उसे व्यक्तिगत पाप और दोष का विचार त्यागकर जिस प्रकार भी हो सके सदा प्रजा का हित करना चाहिए यही सनातन राजधर्म है।

(१७) पापफल-भोग

एको हि कुरुते पापं कालपाशवशं गतः।
नीचेनात्मापचारेण कुलं तेन विनश्यति ॥ (युद्धकाण्ड)

काल के पाश में बंधा हुआ मनुष्य स्वयं पाप करता है, किन्तु उस एक अधम के अपराध से सारा कुल नष्ट हो जाता है।

(१८) गुण-प्रभाव

प्रशमश्च क्षमा चैव आर्जवं प्रियवादिता।
असामर्थ्यं फलन्त्येते निर्गुणेषु सतां गुणाः ॥ (युद्धकाण्ड)

शान्ति, क्षमा, सरलता, प्रियभाषण—ये सज्जनों के गुण हैं। गुणहीन दुर्जन पर इन गुणों से शिष्ट व्यवहार का सत्प्रभाव नहीं पड़ता, उलटे सज्जनों की असमर्थता ही प्रकट होती है।

(१९) सृष्टिस्थिति

सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं च जीवितम् ॥ (अयोध्या-काण्ड)

समस्त संग्रहों का अन्त—विनाश है' बहुत उत्थान का अन्त पतन है, संयोग का अन्त वियोग है और जीवन का अन्त मरण हैं।

ग्रन्थसम्मतयः

(१)

(श्री १०८ स्वामी करपात्री जी महाराज, संस्थापक : धर्मसंघ, वाराणसी)

भारतीय-संस्कृतेः सभ्यतायाश्च मौलिकं रूपं महर्षिणा वाल्मीकिना स्वकीयरामायणे समुपस्थापितमिति सर्वविदितम् । तस्मात् सङ्कलितमिदं संक्षिप्तवाल्मीकिरामायणं हिन्दीभाषया सम्यक् प्रसङ्गनिर्देशयुतमतीव लोकोपयोगि, विशेषतश्चाध्ययनशीलानामन्तेवसतां विषमेऽनेहसि ।

—करपात्र स्वामी

(२)

(श्री प० शोभाकान्त-जयदेवझा, व्याकरण-न्याय-वेदान्ताचार्य, तर्कवेदान्ततीर्थ, दरभङ्गास्थ-मिथिला-संस्कृत-शोधसंस्थान-सञ्चालक)

कस्तावत् सचेता विपश्चिद् आदिकविं महर्षिवाल्मीकिं न श्रद्दधते, किं तदीयं महाकाव्यं वाल्मीकीयरामायणं न सादरमधीते मनुते च । आदिकवेर्वाल्मीकेरुपजीवका एव सन्ति परवर्तिनः समेऽपि महाकवय इति जानन्त्येवाधुनिकसमीक्षकाः ।

अधुना विद्वांसोऽपि विशदकलेवरं ग्रन्थं समग्रमध्येतुं नैव प्रयतन्ते, समयाभावादतो जाता मान्यानां विशदकलेवराणां संक्षिप्तीकरण-प्रक्रिया; यथा संक्षिप्ता बभूव महाकविबाणस्य कथा कादम्बरी, अथ च संक्षिप्तमभूत्तदीयं हर्षचरितम् । एवमेव वाल्मीकीयरामायणमपि संक्षिप्तीकृतं श्रीमता भक्तप्रवरेण विदुषा भागवतसिंह-महाशयेन ।

अनेन संक्षिप्तीकृते वाल्मीकीयरामायणे सर्वमपि प्रसङ्गेन यथामति हिन्दीभाषया प्रदर्शितमिति तत्पाठकानामर्थानुसन्धाने जायते परमं सौलभ्यम् ।

आशासे लाघवगौरवप्रक्रियाशालिनः सुधियोऽपि प्रस्तुतं संक्षिप्तं वाल्मीकीयरामायणं सादरं सस्नेहञ्च स्वीकृत्य संक्षेपकं भक्तप्रवरभागवतसिंह-महाशयं प्रसादयिष्यन्ति । मित्रवर-ठक्कुरोपनामक-श्रीकृष्णमोहनविद्भिः सम्पादितं शोधपूर्णभूमिकादिसंयुतमिदमतीवोपयोगिसञ्जातमिति मणिकाञ्चन-संयोगः ।

अहमपि प्रस्तुतग्रन्थस्य विश्वविद्यालयपरीक्षापाठ्यतया चिरायुष्ट्वं प्रार्थयन् विरमामीति ।

—शोभाकान्त झा जयदेव झा

(**श्रीविष्णुकान्त झा**, 'विद्यावाचस्पति', 'पद्मश्री', ज्यौतिषाचार्य, ज्यौतिषरत्न, ज्यौतिषपञ्चानन, दैवज्ञशिरोमणि, साहित्यालङ्कार, विद्वन्मानसहंस, कविपुङ्गव)

जगति विदितकीर्त्तिः पूज्यवाल्मीकिनामा
प्रथमकविवरेण्यो वन्दनीयः सुधीभिः ।
य इह सुर-गवी-शृत्-पद्य-साधु-प्रणेता
स जयति माहताभो दिव्यधामा मुनीन्द्रः ॥ १ ॥
सुर-गण-मुनि-वृन्दैरर्च्चितस्योत्तमस्य
निखिल-भुवन-भर्त्तुर्ब्रह्मणो 'राम'नाम्नः ।
सकल-शुभकथा-सद्वर्णनं देववाण्यां
व्यरचयदिह वृत्तैर्मान्य- '**वाल्मीकि**'रादौ ॥ २ ॥
शुचिकर-रचना या पापहा काव्यरूपा
भगवति सुररामे भक्तिसंवृद्धिदा सा ।
भुवि परममहिष्ठाऽपूर्व'रामायणाख्या'
जयति जयति नित्यं मान्य '**वाल्मीकि**'पूर्वा ॥ ३ ॥
तस्यादिकाव्यस्य सुविश्रुतस्य, 'वाल्मीकि-रामायण' संज्ञकस्य ।
सद्राष्ट्रभाषात्मक - साररूपं दृष्ट्वा मनो मे मुदमेति पूर्णम् ॥ ४ ॥
सिंहोपाधियुतः श्रीमान् श्री**भागवतसंज्ञकः** ।
साधारणजनानां हि स्वल्पसंस्कृतज्ञानिनाम् ॥ ५ ॥
बोधाय कृतवान् हिन्दीं संक्षिप्य सारबोधिनीम् ।
ठक्कुरोपाधिसंयुक्त - '**कृष्णमोहन**' शर्मणा ॥ ६ ॥
सम्पादितमिदं हृद्यं भूमिकादिसुसंयुतम् ।
दृष्ट्वा प्रसीदेत् सर्वेषां मनो नूनं न संशयः ॥ ७ ॥
रामनामकथा दिव्याऽशेषपापप्रणाशिनी ।
पवित्रकर्त्री गङ्गेव चतुर्वर्गफलप्रदा ॥ ८ ॥
सम्पूज्य-वाल्मीकिपदान्वितस्य 'रामायणाख्यस्य' कृतेऽद्य भक्त्या ।
पद्यप्रसूनाञ्जलिमर्पयेऽहं श्री**विष्णुकान्तो** विदुषां शुभैषी: ॥ ९ ॥

—**विष्णुकान्त झा (पटना)**

(४)

(आचार्य श्रीप्रियव्रतशर्मा, काशी विश्वविद्यालयीय-

द्रव्य-गुण-विभागाध्यक्ष, वाराणसी)

श्रीमता भागवतसिंहेन सम्पादितं संक्षिप्तवाल्मीकिरामायणमवलोक्य मोमुद्यते मे चेतः। वाल्मीकिरादिकविः तद्रचितं रामायणञ्च परिणतः शोकः अद्यापि सकललोकमशोकं करोति। कुशलवाभ्यां गीतमेतत् पावनमाख्यानं चिरात् सचेतसां चेतश्चमत्करोति, पुनाति च सर्वतोभावेन भूमण्डलवासिनां मनांसि। अयं विषादस्य विषयो यदेतादृशस्य लोकोत्तरकाव्यस्येतिहासस्य च संस्कृतभाषाया अनभिज्ञतया लोके प्रचारो न दृश्यतेऽधुना। इदानीं नैकविघसंकटाकुले भारतदेशे श्रीवाल्मीकिरामायणस्याधीतिबोधाचरणप्रचारणैरुपासनमावश्यकमनुभूयते राष्ट्रहितैषिभिर्विद्वद्वर्यैः। अनेन संक्षिप्त-संस्करणेन राष्ट्रभाषासङ्गतिसंवलितेन रामचरितस्य लोके प्रसारो भविष्यति सर्वश्चोपकृतो भवेदित्याशास्महे। सम्पादक - भूमिकालेखक-श्रीठक्कुर - महोदयाय च तल्लीनकायवाङ्मनसे शुभवादान् वितीर्य शं कामयामहे भगवतः शंकरात्।

—प्रियव्रत शर्मा

(५)

(श्रीरामधारी सिंह 'दिनकर'जी, पद्मविभूषण-ज्ञानपीठपुरस्कृत-राष्ट्रकवि)

वाल्मीकीय-रामायण का संक्षिप्त संस्करण देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। इस पुस्तक की विशेषता यह है कि प्रसङ्गों का उल्लेख हिन्दी में किया गया है और मूल श्लोक संस्कृत में दिये गये हैं। जो लोग इतना संस्कृत जानते हैं कि प्रसङ्ग को समझ कर श्लोक के भावों को भी समझ लें, उनके लिये यह अधिक उपयोगी ग्रन्थ है। कथा की दृष्टि से भी श्री भागवतप्रसाद सिंहजी ने रामायण का सार एकत्र कर दिया है। कुछ विशिष्ट संवाद भी हैं और सुन्दर कवित्वपूर्ण श्लोक भी। मुझे यह ग्रन्थ बहुत अच्छा लगा है। इस विषय के परीक्षार्थी के लिये भी यह बहुत लाभदायक सिद्ध अवश्य होगा।

– रामधारी सिंह 'दिनकर'

(६)

(डॉ० रामशरण शर्मा, इतिहास-विभागाध्यक्ष : पटना विश्वविद्यालय तथा अध्यक्ष, भारतीय-इतिहास-अनुसन्धान-परिषद, नयी दिल्ली)

श्री भागवत प्रसाद सिंह जी की पुस्तक, 'संक्षिप्त-वाल्मीकिरामायणम्' देखने का मुझे सुअवसर मिला। लेखक ने बड़े परिश्रम और लगन से रामायण के कथानक श्लोक का चयन शृंखलाबद्ध प्रस्तुत किया है। इससे रामायण की मूलकथा से पाठकों को केवल परिचय ही नहीं होगा बल्कि उन्हें भारतीय संस्कृति के प्रमुख सिद्धान्तों की शिक्षा भी मिलेगी। जो लोग संस्कृत का प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त कर रामायण को समझना चाहते हैं, उनके लिये प्रस्तुत ग्रन्थ बहुत लाभप्रद सिद्ध होगा। श्री सिंहजी को ग्रन्थ-मुद्रण करा कर प्रकाशित करानेके लिये बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि इसका प्रचार एवं प्रसार अवश्य होगा।

—डा० रामशरण शर्मा

(पण्डित प्रवर-**श्रीआद्याचरण पाण्डेय**, व्याकरण-साहित्य-आयुर्वेदाचार्य, न्याय एवं सङ्गीतशास्त्री, उपकुलपति : श्रीमदध्यात्मपीठ-ब्रह्मचर्याश्रम नैमिषारण्य, सीतापुर)

मैंने स्वनामधन्य श्री बाबू भागवत सिंहजी के सङ्कलनात्मक 'संक्षिप्त-वाल्मीकीय-रामायण' ग्रन्थ को अविकल रूप से पढ़ा। इसमें तत्त्वग्राही लेखक ने वाल्मीकीय रामायण के मार्मिक उपदेशप्रद जिन श्लोकों का सङ्कलन किया है, वे सदा वाल्मीकीय रामायण के भक्तों को अपनी ओर आकृष्ट करते रहेंगे। सभी जगह श्लोकों के आरम्भ में संक्षिप्तप्रसङ्ग हिन्दी भाषा में दे देनेसे साधारण रूप से संस्कृत जाननेवालों को इससे बड़ी सहायता मिलेगी। वाल्मीकीय रामायण के पढ़ने या सुनने पर मुख्य चरित्रों की जिज्ञासा होती हुई भी उन्हें ऐसे महासागर ग्रन्थ से निकाल लेना बहुत सरल कार्य नहीं है। विद्वान संग्रहकर्त्ता का यह स्तुत्य प्रयास एक अभाव का पूरक होगा। साथ ही लघुकाय वाला यह संग्रह वाल्मीकीय रामायण का प्रचारक एवं प्रसारक होगा, ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है।

काशी के लब्धप्रतिष्ठ मान्य विद्वान् ठक्कुरोपनामक श्री प० कृष्णमोहन शास्त्री जी ने जो इसमें विद्वत्तापूर्ण भूमिका आदि का संयोग कर दिया है इससे ग्रन्थ की उपयोगिता और अधिक बढ़ गयी है। महर्षि वाल्मीकिजी के सम्बन्ध में इतना शोधपूर्ण विवेचन प्रायः कहीं एक जगह देखने में नहीं आता है, यह इसकी बड़ी विशेषता है, इसके जिज्ञासुओं को इससे बहुत लाभ होगा।

यदि गुणग्राही जन इस संकलन को शिक्षा संस्थानों तक पहुँचाने का प्रयास करेंगे तो इस देश के बालकों एवं युवकों में भारतीय धर्म एवं संस्कृति का संस्कार उत्पन्न होगा और महात्मा गान्धीजी का रामराज्य का सपना सत्य एवं साकार होगा। मैं भगवान् श्री विश्वनाथ से यह प्रार्थना करता हूँ कि भावुक लेखक की यह दिव्य अवतारणा सफल हो।

—आद्याचरण पाण्डेय

卐

संक्षिप्तवाल्मीकिरामायणम्

मङ्गलाचरणम्

रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे ।
रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः ॥ १ ॥

रामं रामानुजं सीतां भरतं भरतानुजम् ।
सुग्रीवं वायुसूनुं च प्रणमामि पुनः पुनः ॥ २ ॥

कूजन्तं राम रामेति मधुरं मधुराक्षरम् ।
आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकिकोकिलम् ॥ ३ ॥

रामायणं महाकाव्यं वेदतत्त्वार्थसंयुतम् ।
यस्य प्रत्यक्षरं पुण्य-जनकं चित्तशान्तिदम् ॥ १ ॥
सनातनं काव्यबीजं मनःसन्तापहारकम् ।
वाल्मीकिनाऽऽदिकविना निर्मितं यज्जगद्धितम् ॥ २ ॥
साररूपं च रामाख्यं प्रतिगृह्य यथाक्रमम् ।
श्रीभागवतसिंहेन तद्विस्तरमहार्णवात् ॥ ३ ॥
स्वधाष्टर्येन महत्कार्ये साहसोद्यतमानसा ।
स्वल्पायासेन भक्तानां बोधाय गुम्फितं मया ॥ ४ ॥
यदत्र स्खलनं जातं तत् क्षमध्वं च पाठकाः ।
कर्मणैतेन श्रीरामः प्रीयतां श्रेयसे मम ॥ ५ ॥
"ऋषीणां भारती भाति सरला गहनान्तरा ।
धीरास्तत्-तत्त्वमिच्छन्ति मुह्यन्ति प्राकृता जनाः" ॥ ६ ॥
इमां सूक्तिमनुस्मृत्य यथामति प्रकाश्यते ।
प्रसङ्गार्थोऽतिसंक्षिप्तो ज्ञानाय राष्ट्रभाषया ॥ ७ ॥

★

॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥

अथ बालकाण्डम्

तपः स्वाध्यायनिरतं तपस्वी वाग्विदां वरम्।
नारदं परिपप्रच्छ वाल्मीकिर्मुनिपुङ्गवम् ॥ सर्ग १, श्लो० १ ॥

सुबह का सुहावना समय था, महर्षि वाल्मीकि तमसातीरस्थित अपने आश्रम में बैठे थे। इतने में वहाँ देवर्षि भगवान् नारद का पदार्पण हुआ। महर्षि ने अर्घ्यपाद्यादि से देवर्षि की यथायोग्य अर्चना की। तदनन्तर महर्षि ने उनसे प्रश्न किया—

'को न्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान्।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः ॥ १, २ ॥
चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः।
विद्वान् कः कः समर्थश्च कश्चैकप्रियदर्शनः ॥ १, ३ ॥

इस पर देवर्षि ने महर्षि को बताया कि आपके कथित सभी गुणों से सम्पन्न एक मात्र दशरथनन्दन श्रीराम ही हैं। देवर्षि ने संक्षेप में श्रीराम की सारी जीवन-घटना का वर्णन सुना दिया और महर्षि द्वारा पूजित होकर वहाँ से प्रस्थान किया।

उसके पश्चात् महर्षि अपने प्रिय शिष्य भरद्वाज के साथ स्नान के लिये तमसा-तट पर पहुँचे। उसी समय उन्हों ने देखा कि एक व्याध ने एक काम मोहित क्रौञ्चपक्षी को बाण से आहत कर दिया है। वह छटपटा रहा था और उसकी मादा चारों ओर क्रन्दन कर रही थी। महर्षि का हृदय सहज करुणा से द्रवित हो उठा और आप ही आप उनके मुँह से निकल पड़ा—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥ २,१५ ॥

चिन्तयन् स महाप्राज्ञः चकार मतिमान् मतिम्।
शिष्यं चैवाब्रवीद् वाक्यमिदं स मुनिपुंगवः ॥ २, १७ ॥

शिष्यस्तु तस्य ब्रुवतो मुनेर्वाक्यमनुत्तमम्।
प्रतिजग्राह संहृष्टस्तस्य तुष्टोऽभवद् गुरुः ॥ २, १९ ॥

इतना कहते ही उन्होंने जब विचार किया तब उनके मन में चिन्ता हुई,

'आः इस पक्षी के शोक में मैने यह क्या कह डाला ?'' सर्वप्रथम कविता (श्लोक) के रूप में इसी पद का आप से आप आविर्भाव हो गया।

उन्होंने अपने शिष्य को सम्बोधित कर कहा—

पादबद्धोऽक्षरसमः तन्त्रीलयसमन्वितः।
शोकार्तस्य प्रवृत्तो मे श्लोको भवतु नान्यथा ॥ २, १८ ॥

स्नान करने के बाद महर्षि अपने आश्रम में लौट आये और विभिन्न विषयों पर चर्चा करने लगे, किन्तु उनकी मनःस्थिति शोकाकुल ही थी।

इतने में तेजःपूर्ण पितामह ब्रह्मा का वहाँ पदार्पण हुआ। महर्षि ने उठकर कृताञ्जलि हो उनका अभिवादन किया। ब्रह्मा ने आसन ग्रहण करने के बाद महर्षि को भी यथास्थान बैठने को कहा और उन्हें आदेश देने लगे—

आजगाम ततो ब्रह्मा लोककर्ता स्वयं प्रभुः।
चतुर्मुखो महातेजा द्रष्टुं तं मुनिपुङ्गवम् ॥ २, २३ ॥
तमुवाच ततो ब्रह्मा प्रहसन् मुनिपुङ्गवम् ॥ २, ३० ॥
श्लोक एवास्त्वयं बद्धो नात्र कार्या विचारणा।
मच्छन्दादेव ते ब्रह्मन् प्रवृत्तेयं सरस्वती ॥ २, ३१ ॥
रामस्य चरितं कृत्स्नं कुरु त्वमृषिसत्तम।
धर्मात्मनो भगवतो लोके रामस्य धीमतः ॥ २, ३२ ॥
वृत्तं कथय धीरस्य यथा ते नारदाच्छ्रुतम्।
रहस्यं च प्रकाशं च यद् वृत्तं तस्य धीमतः ॥ २, ३३ ॥
रामस्य सह सौमित्रे राक्षसानां च सर्वशः।
वैदेह्याश्चैव यद् वृत्तं प्रकाशं यदि वा रहः ॥ २, ३४ ॥
तच्चाप्यविदितं सर्वं विदितं ते भविष्यति।
न ते वागनृता काव्ये काचिदत्र भविष्यति ॥ २, ३५ ॥
कुरु रामकथां पुण्यां श्लोकबद्धां मनोरमाम्।
यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले ॥ २, ३६ ॥
तावद् रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति।
यावद् रामायणकथा त्वत्कृता प्रचरिष्यति ॥ २, ३७ ॥
तावदूर्ध्वमधश्च त्वं मल्लोकेषु निवत्स्यसि ॥ २, ३८ ॥

इसके पश्चात् महर्षि से पूजित हो पितामह ब्रह्मा ने अपने लोक को प्रस्थान किया। इधर महर्षि ध्यान द्वारा देखने लगे—

तत: पश्यति धर्मात्मा तत् सर्वं योगमास्थित: ।
पुरा यत् यत्र निर्वृत्तं पाणावामलकं यथा ॥ ३, ६ ॥

तत्सर्वं तत्त्वतो दृष्ट्वा धर्मेण स समाहित: ।
अभिरामस्य रामस्य तत् सर्वं कर्तुमुद्यत: ॥ ३, ७ ॥

चिरनिर्वृत्तमप्येतत् प्रत्यक्षमिव दर्शितम् ।

यथासमय रामायण निर्माणकार्य सम्पन्न हुआ। महर्षि ने तन्त्रीलय समन्वित पूर्णरूपेण इसे कुमार लव-कुश को अध्ययन कराया। ऋषिमण्डली में उसका गायन भी हुआ और ऋषियों ने यथाकाल कुमारों को पुरस्कृत भी किया।

ऋषिका यथानिर्दिष्ट सर्वगुणसम्पन्न महाकाव्य का निर्माण पूरा हुआ, पर विचार में आया कि इसे प्रयोग कौन करेगा ? उसी समय उनके समक्ष लव-कुश का प्रवेश हुआ—

कृत्वापि तन्महाप्राज्ञ: सभविष्यं सहोत्तरम् ।
चिन्तयामास को न्वेतत् प्रयुञ्जीयादिति प्रभु: ॥ ४, ३ ॥

तस्य चिंतयमानस्य महर्षेर्भावितात्मन: ।
अगृह्णीतां तत: पादौ मुनिवेषौ कुशीलवौ ॥ ४, ४ ॥

कुशीलवौ तु धर्मज्ञौ राजपुत्रौ यशस्विनौ ।
भ्रातरौ स्वरसम्पन्नौ ददर्शाश्रमवासिनौ ॥ ४, ५ ॥

स तु मेधाविनौ दृष्ट्वा वेदेषु परिनिष्ठितौ ।
वेदोपबृंहणार्थाय तावग्राहयत प्रभु: ॥ ४, ६ ॥

काव्यं रामायणं कृत्स्नं सीतायाश्चरितं महत् ।
पौलस्त्यवधमित्येव चकार चरितव्रत: ॥ ४, ७ ॥

पाठ्ये गेये च मधुरं प्रमाणैस्त्रिभिरन्वितम् ।
जातिभि: सप्तभिर्बद्धं तन्त्रीलयसमन्वितम ॥ ४, ८ ॥

रसै: शृङ्गारकरुणहास्यरौद्रभयानकै: ।
वीरादिभिश्च संयुक्तं काव्यमेतदगायताम् ॥ ४, ९ ॥

तौ तु गांधर्वतत्त्वज्ञौ मूर्च्छनास्थानकोविदौ ।
भ्रातरौ स्वरसम्पन्नावश्विनाविव रूपिणौ ॥ ४, १० ॥

रूपलक्षणसम्पन्नौ मधुरस्वरभाषिणौ ।
बिम्बादिवोत्थितौ बिम्बौ रामदेहात्तथापरौ ॥ ४, ११ ॥

तौ राजपुत्रौ कार्त्स्न्येन धर्म्यमाख्यानमुत्तमम् ।
वाचो विधेयं तत्सर्वं कृत्वा काव्यमनिन्दितौ ॥ ४, १२ ॥
ऋषीणां च द्विजातीनां साधूनां च समागमे ।
यथोपदेशं तत्त्वज्ञौ जगतुस्तौ समाहितौ ॥ ४, १३ ॥
प्रविश्य तावुभौ सुष्ठु यथाभावमगायताम् ॥ ४, १८ ॥
सहितौ मधुरं रक्तं सम्पन्नं स्वरसम्पदा ॥ ४, १९ ॥

रामायण की कथा का आरम्भ— राजा दशरथ संतानहीन थे, इसलिये उन्होंने पुत्रेष्टि यज्ञ का आरम्भ किया। वशिष्ठजी ने यज्ञ की रचना के लिये सुमन्त्र को आदेश दिया—

ततः सुमन्त्रमाहूय वसिष्ठो वाक्यमब्रवीत् ॥ १३, १९ ॥
निमन्त्रयस्व नृपतीन् पृथिव्यां ये च धार्मिकाः ।
ब्राह्मणान् क्षत्रियान् वैश्याञ्शूद्रांश्चैव सहस्रशः ॥ १३, २० ॥
समानयस्व सत्कृत्य सर्वदेशेषु मानवान् ।
मिथिलाधिपतिं शूरं जनकं सत्यवादिनम् ॥ १३, २१ ॥

उस यज्ञ में अपने अपने भाग लेने के लिये सभी देवता उपस्थित हुए थे। सबों ने एक गोष्ठी की। सभी देवता एवं महर्षिगण रावण के अत्याचार से विक्षुब्ध थे। भगवान् विष्णु भी गोष्ठी में सम्मिलित हुए थे। ब्रह्मासहित देवताओं ने उनसे प्रार्थना की—

राज्ञो दशरथस्य त्वमयोध्याधिपतेर्विभो ॥ १५, १२ ॥
धर्मज्ञस्य वदान्यस्य महर्षिसमतेजसः ।
तस्य भार्यासु तिसृसु ह्रीश्रीकीर्त्युपमासु च ॥ १५, २० ॥
विष्णो ! पुत्रत्वमागच्छ कृत्वाऽऽत्मानं चतुर्विधम् ।
तत्र त्वं मानुषो भूत्वा प्रवृद्धं लोककण्टकम् ॥ १५, २१ ॥
अवध्यं दैवतैर्विष्णो समरे जहि रावणम् ॥ १५, २१ ॥
त्वं गतिः परमा देव सर्वेषां नः परंतप ॥ १५, २५ ॥
वधाय देवशत्रूणां नृणां लोके मनः कुरु ॥ १५, २५ ॥

भगवान् विष्णु का आश्वासन—

भयं त्यजत भद्रं वो हितार्थं युधि रावणम् ।
सपुत्रपौत्रं सामात्यं समन्त्रिज्ञातिबान्धवम् ॥ १५, २८ ॥

हत्वा क्रूरं दुराधर्षं देवर्षीणां भयावहम्।
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ॥ १५, २९ ॥
वत्स्यामि मानुषे लोके पालयन् पृथिवीमिमाम् ॥

विष्णु ने देवताओं से रावणवध का उपाय पूछा—

ततो नारायणो विष्णुर्नियुक्तः सुरसत्तमैः ॥ १६, १ ॥
जानन्नपि सुरानेवं श्लक्ष्णं वचनमब्रवीत् ॥

उपायः को वधे तस्य राक्षसाधिपतेः सुराः।
यमहं तं समास्थाय निहन्यामृषिकण्टकम् ॥ १६, २ ॥

इस पर देवताओं ने कहा—

एवमुक्ताः सुराः सर्वे प्रत्यूचुर्विष्णुमव्ययम्।
मानुषं रूपमास्थाय रावणं जहि संयुगे ॥ १६, ३ ॥

स हि तेपे तपस्तीव्रं दीर्घकालमरिन्दमः।
येन तुष्टोऽभवद् ब्रह्मा लोककृल्लोकपूर्वजः ॥ १६, ४ ॥

संतुष्टः प्रददौ तस्मै राक्षसाय वरं प्रभुः।
नानाविधेभ्यो भूतेभ्यो भयं नान्यत्र मानुषात् ॥ १६, ५ ॥

अवज्ञाताः पुरा तेन वरदानेन मानवाः।
एवं पितामहात् तस्माद् वरदानेन गर्वितः ॥ १६, ६ ॥

उत्सादयति लोकाँस्त्रीन् स्त्रियश्चाप्युपकर्षति।
तस्मात् तस्य वधो दृष्टो मानुषेभ्यः परंतप ॥ १६, ७ ॥

यह सुन विष्णु ने अवतार धारण का कार्यक्रम निश्चित किया और देवताओंसे पूजित हो वह अन्तर्धान हो गये—

इत्येतद् वचनं श्रुत्वा सुराणां विष्णुरात्मवान्।
पितरं रोचयामास तदा दशरथं नृपम् ॥ १६, ८ ॥

स चाप्यपुत्रो नृपतिस्तस्मिन् काले महाद्युतिः।
अयजत् पुत्रियामिष्टिं पुत्रेप्सुररिसूदनः ॥ १६, ९ ॥

स कृत्वा निश्चयं विष्णुरामन्त्र्य च पितामहम्।
अन्तर्धानं गतो देवैः पूज्यमानो महर्षिभिः ॥ १६, १० ॥

दशरथ के पुत्रेष्टि यज्ञ से प्रसन्न हुए अग्निदेव से प्राप्त पायस को रानियों में विभक्त किया गया और कौसल्यादि रानियों का गर्भाधान हुआ—

ततस्तु ताः प्राश्य तदुत्तमस्त्रियो महीपतेरुत्तमपायसं पृथक् ।
हुताशनादित्यसमानतेजसोऽचिरेण गर्भान् प्रतिपेदिरे तदा ॥ १६, ३१ ॥

ततस्तु राजा प्रतिवीक्ष्य ताः स्त्रियः प्ररूढगर्भाः प्रतिलब्धमानसाः ।
बभूव हृष्टस्त्रिदिवे यथा हरिः सुरेन्द्रसिद्धर्षिगणाभिपूजितः ॥ १६, ३२॥

राम सब भाइयों में बड़े थे—

ज्येष्ठं रामं महात्मानं भरतं कैकयीसुतम् ।
सौमित्रिं लक्ष्मणमिति शत्रुघ्नमपरं तथा ॥ १८, २१ ॥
तेषां जन्मक्रियादीनि सर्वकर्माण्यकारयत् ।
तेषां केतुरिव ज्येष्ठो रामो रतिकरः पितुः ॥ १८, २४ ॥

थोड़े ही दिनों के बाद सभी कुमार विविध शिक्षा-दीक्षा में प्रवीण हो गये—

बभूव भूयो भूतानां स्वयम्भूरिव सम्मतः ।
सर्वे वेदविदः शूराः सर्वे लोकहिते रताः ॥
तेषामपि महातेजा रामः सत्यपराक्रमः ॥ १८, २५ ॥

गजस्कन्धेऽश्वपृष्ठे च रथचर्यासु सम्मतः ।
धनुर्वेदे च निरतः पितुः शुश्रूषणे रतः ॥ १८, २७ ॥

इसी बीच ब्रह्मर्षि विश्वामित्र जी ने आकर ताड़कादि राक्षसों को मारकर अपने यज्ञरक्षार्थ राजा से श्रीराम को माँगा—

स्वपुत्रं राजशार्दूल ! रामं सत्यपराक्रमम् ।
काकपक्षधरं वीरं ज्येष्ठं मे दातुमर्हसि ॥ १९, ८ ॥

वसिष्ठ के कहने पर राजा ने राम को दे दिया और वे मुनी के साथ चल पड़े—

विश्वामित्रो ययावग्रे ततो रामो महायशाः ।
काकपक्षधरो धन्वी तं च सौमित्रिरन्वगात् ॥ २२, ६ ॥

रास्ते में विश्वामित्र ने श्री राम को बला और अतिबला विद्या दी एवं सारे दिव्यास्त्र समर्पण किये। जब ताड़का पर आक्रमण की बारी आई, तब श्री विश्वामित्रजी ने राम को प्रोत्साहित किया और विचार के दृढीकरणहे प्रमाण दिये :—

न ह्येनां शापसंसृष्टां कश्चिदुत्सहते पुमान् ।
निहन्तुं त्रिषु लोकेषु त्वामृते रघुनन्दन ॥ २५, १६ ॥

न हि ते स्त्रीवधकृते घृणा कार्या नरोत्तम ।
चातुर्वर्ण्यहितार्थं हि कर्तव्यं राजसूनुना ॥ २५, १७ ॥

नृशंसमनृशंसं वा प्रजारक्षणकारणात् ।
पातकं वा सदोषं वा कर्तव्यं रक्षता सदा ॥ २५, १८ ॥

राज्यभारनियुक्तानामेष धर्मः सनातनः ।
अधर्म्यां जहि काकुत्स्थ धर्मो ह्यस्यां न विद्यते ॥ २५, १९ ॥

श्रूयते हि पुरा शक्रो विरोचनसुतां नृप ।
पृथिवीं हन्तुमिच्छन्तीं मन्थरामभ्यसूदयत् ॥ २५, २० ॥

विष्णुना च पुरा राम भृगुपत्नी पतिव्रता ।
अनिन्द्रं लोकमिच्छन्ती काव्यमाता निषूदिता ॥ २५, २१ ॥

एतैश्चान्यैश्च बहुभी राजपुत्रैर्महात्मभिः ।
अधर्मसहिता नार्यो हताः पुरुषसत्तमैः ॥

तस्मादेनां घृणां त्यक्त्वा जहि मच्छासनान्नृप ॥ २५, २२ ॥

इस पर मुनि को राम ने उत्तर दिया—

गोब्राह्मणहितार्थाय देशस्य च हिताय च ।
तव चैवाप्रमेयस्य वचनं कर्तुमुद्यतः ॥ २६, ५ ॥

फिर राम ने ताड़का एवं सुबाहु प्रभृति राक्षसों को मार कर मुनि का यज्ञ निर्विघ्न सम्पन्न कराया। तत्पश्चात् ऋषिमण्डली के साथ मिथिलाधिपति जनक के यज्ञ देखने के लिये उन्हों ने प्रस्थान किया। रात में शोणभद्र के तट पर निवास किया। वार्तालाप के क्रम में कुशनाभ की कन्याओं का प्रसंग आया। विश्वामित्र ने कुशनाभ के अपनी बेटियों की क्षमाशीलता पर प्रसन्न होकर उनसे कहा :—

क्षान्तं क्षमावतां पुत्र्यः कर्तव्यं सुमहत् कृतम ।
ऐक्यमत्यमुपागम्य कुलं चावेक्षितं मम ॥ ३३, ६ ॥

अलंकारो हि नारीणां क्षमा तु पुरुषस्य वा ।
दुष्करं तच्च वै क्षान्तं त्रिदशेषु विशेषतः ॥
यादृशी वः क्षमा पुत्र्यः सर्वासामविशेषतः ॥ ३३, ७ ॥

क्षमा की महत्ता—

क्षमा दानं क्षमा सत्यं क्षमा यज्ञाश्च पुत्रिकाः ।
क्षमा यशः क्षमा धर्मः क्षमायां विष्ठितं जगत् ॥ ३३, ८ ॥

गंगापार करते समय सगरपुत्रों के विषय में प्रसग छिड़ने पर ब्रह्मा द्वारा भगवान् की महत्ता का वर्णन —

यस्येयं वसुधा कृत्स्ना वासुदेवस्य धीमतः।
महिषी माधवस्यैषा स एव भगवान् प्रभुः॥ ४०, २॥
कापिलं रूपमास्थाय धारयत्यनिशं धराम्।
तस्य कोपाग्निना दग्धा भविष्यन्ति नृपात्मजाः॥ ४०, ३॥
पृथिव्याश्चापि निर्भेदो दृष्ट एव सनातनः।
सगरस्य च पुत्राणां विनाशो दीर्घदर्शिनाम्॥ ४०, ४॥

ब्रह्मर्षि ने अमृत प्राप्ति के लिये देवताओं और दैत्यों द्वारा मिलकर समुद्र मन्थन का प्रसंग सुनाया।

समुद्र मन्थन से प्रथमतः हलाहल (विष) की उत्पत्ति हुई, जिससे सबों के नाश की शंका उत्पन्न हो गई—

ततो निश्चित्य मथनं योक्त्रं कृत्वा च वासुकिम्।
मन्थानं मन्दरं कृत्वा ममन्थुरमितौजसः॥ ४५, १८॥
अथ वर्षसहस्रेण योक्त्रसर्पशिरांसि च।
वमन्तोऽतिविषं तत्र ददंशुर्दशनैः शिलाः॥ ४५, १९॥
उत्पपाताग्निसंकाशं हालाहलमहाविषम्।
तेन दग्धं जगत् सर्वं सदेवासुरमानुषम्॥ ४५, २०॥
अथ देवा महादेवं शंकरं शरणार्थिनः।
जग्मुः पशुपतिं रुद्रं त्राहि त्राहीति तुष्टुवुः॥ ४५, २१॥

वहीं भगवान् विष्णु का प्रकट होना—

एवमुक्तस्ततो देवैर्देवदेवेश्वरः प्रभुः।
प्रादुरासीत् ततोऽत्रैव शङ्खचक्रधरो हरिः॥ ४५, २२॥

विष्णु के कहने पर भगवान् शंकर ने हलाहल का पान किया

उवाचैनं स्मितं कृत्वा रुद्रं शूलधरं हरिः।
दैवतैर्मथ्यमाने तु यत्पूर्वं समुपस्थितम्॥ ४५, २३॥
तत् त्वदीयं सुरश्रेष्ठ सुराणामग्रतो हि यत्।
अग्रपूजामिह स्थित्वा गृहाणेदं विषं प्रभो॥ ४५, २४॥

विषपान कर शंभु ने वहाँ से प्रस्थान किया—

इत्युक्त्वा च सुरश्रेष्ठस्तत्रैवान्तरधीयत ।
देवतानां भयं दृष्ट्वा श्रुत्वा वाक्यं तु शार्ङ्गिणः ॥ ४५, २५ ॥

हालाहलं विषं घोरं संजग्राहामृतोपमम् ।
देवान् विसृज्य देवेशो जगाम भगवान् हरः ॥ ४५, २६ ॥

देव-दानव दोनों ने फिर मन्थनक्रिया आरंभ की, किन्तु मथानी ही पाताल में चली गई। इसपर देवताओं ने विष्णु की प्रार्थना की—

ततो देवासुराः सर्वे ममन्थू रघुनन्दन ।
प्रविवेशाथ पातालं मन्थानः पर्वतोत्तमः ॥ ४५, २७ ॥

ततो देवाः सगन्धर्वास्तुष्टुवुर्मधुसूदनम् ।
त्वं गतिः सर्वभूतानां विशेषेण दिवौकसाम् ॥ ४५, २८ ॥

पालयास्मान् महाबाहो ! गिरिमुद्धर्तुमर्हसि ।

इस पर भगवान् विष्णु ने कच्छप रूपधारण कर पर्वत को पीठ पर उठा लिया। इसके बाद धन्वन्तरि और अप्सराओं का प्रादुर्भाव हुआ—

इति श्रुत्वा हृषीकेशः कमठं रूपमास्थितः ॥ ४५, २९ ॥
पर्वतं पृष्ठतः कृत्वा शिश्ये तत्रोदधौ हरिः ।
पर्वताग्रं तु लोकात्मा हस्तेनाक्रम्य केशवः ॥ ४५, ३० ॥
देवानां मध्यतः स्थित्वा ममन्थ पुरुषोत्तमः ।
अथ वर्षसहस्रेण आयुर्वेदमयः पुमान् ॥ ४५, ३१ ॥
उदतिष्ठत् सुधर्मात्मा सदण्डः सकमण्डलुः ।
पूर्वं धन्वन्तरिर्नाम अप्सराश्च सुवर्चसः ॥ ४५, ३२ ॥

अप्सु निर्मथनादेव रसात् तस्मात् वरस्त्रियः ।
उत्पेतुर्मनुजश्रेष्ठ ! तस्मादप्सरसोऽभवन् ॥ ४५, ३३ ॥

षष्टिकोटयोऽभवंस्तासामप्सराणां सुवर्चसाम् ।
असंख्येयास्तु काकुत्स्थ यास्तासां परिचारिकाः ॥ ४५, ३४ ॥

न ताः स्म प्रतिगृह्णन्ति सर्वे ते देवदानवाः ।
अप्रतिग्रहणादेव ता वै साधारणाः स्मृताः ॥ ४५, ३५ ॥

वरुण-कन्या वारुणी का प्रादुर्भाव—

वरुणस्य ततः कन्या वारुणी रघुनन्दन ।
उत्पपात महाभागा मार्गमाणा परिग्रहम् ॥ ४५, ३६ ॥

सुराग्रहण के कारण देवता सुर हुए और उसको न ग्रहण के कारण दानव असुर कहलाये—

दितेः पुत्रा न तां राम ! जगृहुर्वरुणात्मजाम् ।
अदितेस्तु सुता वीर ! जगृहुस्तामनिन्दिताम् ॥ ४५, ३७ ॥
असुरास्तेन दैतेयाः सुरास्तेनादितेः सुताः ।
हृष्टाः प्रमुदिताश्चासन् वारुणीग्रहणात् सुराः ॥ ४५, ३८ ॥

उच्चैःश्रवा घोड़े का, कौस्तुभमणि एवं अमृत का उद्भव—

उच्चैःश्रवा हयश्रेष्ठो मणिरत्नं च कौस्तुभम् ।
उदतिष्ठन्नरश्रेष्ठ ! तथैवामृतमुत्तमम् ॥ ४५, ३९ ॥

अमृत के लिये ही देवताओं और असुरों में घोर संग्राम हुआ—

अथ तस्य कृते राम ! महानासीत् कुलक्षयः ।
अदितेस्तु ततः पुत्रा दितिपुत्रानयोधयन् ॥ ४५, ४० ॥

दिति के गर्भ में इन्द्रहन् का आविर्भाव हुआ। इन्द्र ने उसे गर्भ ही में सात टुकड़े कर दिये, तब से वे वातस्कन्ध कहलाये उनके नाम इस प्रकार हैं—आवह, प्रवह, संवह, उद्वह, विवह, परिवह एवं परावह—

वातस्कन्धा इमे सप्त चरन्तु दिवि पुत्रक ! ।
मारुता इति विख्याता दिव्यरूपा ममात्मजाः ॥ ४७, ४ ॥

विशाला में पहुँच कर मुनि ने उसका परिचय दिया—

इक्ष्वाकोस्तु नरव्याघ्र ! पुत्रः परमधार्मिकः ।
अलम्बुषायामुत्पन्नो विशाल इति विश्रुतः ॥ ४७, ११ ॥
तेन चासीदिह स्थाने विशालेति पुरीकृता ।

इन्द्र ने अहल्या के शीलहरण के लिये गौतम का रूप धारण किया और उससे कहा—

ऋतुकालं प्रतीक्षन्ते नार्थिनः सुसमाहिते ॥ ४७, १२ ॥
संगमं त्वहमिच्छामि त्वया सह सुमध्यमे ॥ ४८, १८ ॥

अहल्या ने पहचान कर भी इन्द्र के साथ सहगमन किया—

मुनिवेषं सहस्राक्षं विज्ञाय रघुनन्दन ।
मतिं चकार दुर्मेधा देवराजकुतूहलात् ॥ ४८, १९ ॥

इन्द्र से सहवास कर अहल्या ने अपने को कृतार्थ माना—

अथाब्रवीत् सुरश्रेष्ठं कृतार्थेनान्तरात्मना ।
कृतार्थास्मि सुरश्रेष्ठ ! गच्छ शीघ्रमितः प्रभो ॥

आत्मानं मां च देवेश सर्वथा रक्ष गौतमात् ॥ ४८, २० ॥

बाद तत्काल गौतम को देखकर इन्द्र विषण्ण हो गया। तब गौतम इन्द्र को देख रोषाभिभूत हो गये और उसे शाप दिया—"विफल हो जा।"

दृष्ट्वा सुरपतिस्त्रस्तो विषण्णवदनोऽभवत् ॥ ४८, २५ ॥
अथ दृष्ट्वा सहस्राक्षं मुनिवेषधरं मुनिः ।
दुर्वृत्त वृत्तसम्पन्नो रोषाद् वचनमब्रवीत् ॥ ४८, २६ ॥
ममरूपं समास्थाय कृतवानसि दुर्मते ।
अकर्तव्यमिदं यस्माद् विफलस्त्वं भविष्यसि ॥ ४८, २७ ॥

गौतम के शाप से इन्द्र के अण्डकोश गिर गये—

गौतमेनैवमुक्तस्य सरोषेण महात्मना ।
पेततुर्वृषणौ भूमौ सहास्राक्षस्य तत्क्षणात् ॥ ४८, २८ ॥

अपनी पत्नी अहल्या को भी गौतमने यहीं अदृश्य होकर रहनेका शाप दिया—

तथा शप्त्वा च वै शक्रं भार्यामपि च शप्तवान् ।
'इह वर्षसहस्राणि बहूनि निवसिष्यसि ॥ ४८, २९ ॥
वातभक्षा निराहारा तप्यन्ती भस्मशायिनी ।
अदृश्या सर्वभूतानामाश्रमेऽस्मिन् वसिष्यसि ॥ ४८, ३० ॥

गौतम ने राम दर्शन से अहल्या के शापमुक्ति की अवधि निश्चित कर दी—

यदा त्वेतद् वनं घोरं रामो दशरथात्मजः ।
आगमिष्यति दुर्धर्षस्तदा पूता भविष्यसि ॥ ४८, ३१ ॥
तस्यातिथ्येन दुर्वृत्ते लोभमोहविवर्जिता ।
मत्सकाशं मुदा युक्ता स्वं वपुर्धारयिष्यसि ॥ ४८, ३२ ॥

इन्द्र का देवताओं से यथावस्थित स्वरूप बनाने का अनुरोध—

अफलस्तु ततः शक्रो देवानग्निपुरोगमान् ।
अब्रवीत् त्रस्तनयनः सिद्धगन्धर्वचारणान् ॥ ४९, १ ॥
'कुर्वता तपसो विघ्नं गौतमस्य महात्मनः ।
क्रोधमुत्पाद्य हि मया सुरकार्यमिदं कृतम् ॥ ४९, २ ॥
अफलोऽस्मि कृतस्तेन क्रोधात् सा च निराकृता ॥
शापमोक्षेण महता तपोऽस्यापहृतं मया ॥ ४९, ३ ॥
तन्मां सुरवराः सर्वे सर्षिसंघाः सचारणाः ।
सुरकार्यकरं यूयं सफलं कर्तुमर्हथ ॥ ४९, ४ ॥

इन्द्र की बात सुनकर देवताओं ने पितृदेव के पास जाकर शल्य चिकित्सा के लिये कहा—

शतक्रतोर्वचः श्रुत्वा देवाः साग्निपुरोगमाः।
पितृदेवानुपेत्याहुः सर्वे सह मरुद्गणैः॥ ४९, ५॥

उत्कृष्ट शल्यचिकित्सा का प्रमाण देते हुए पितरों ने इन्द्र को फिर से सफल बना दिया—

अयं मेषः सवृषणः शक्रो ह्यवृषणः कृतः।
मेषस्य वृषणौ गृह्य शक्रायाशु प्रयच्छत॥ ४९, ६॥

अग्नेस्तु वचनं श्रुत्वा पितृदेवाः समागताः।
उत्पाट्य मेषवृषणौ सहस्राक्षे न्यवेशयन्॥ ४९, ७॥

विश्वामित्र के साथ गोतम के आश्रम में पहुँच कर श्रीराम ने अहल्या का उद्धार किया—

विश्वामित्रवचः श्रुत्वा राघवः सह लक्ष्मणः।
विश्वामित्रं पुरस्कृत्य आश्रमं प्रविवेश ह॥ ४९, १२॥

ददर्श च महाभागां तपसा द्योतितप्रभाम्।
लोकैरपि समागम्य दुर्निरीक्ष्यां सुरासुरैः॥ ४९, १३॥

प्रयत्नान्निर्मितां धात्रा दिव्यां मायामयीमिव।
धूमेनाभिपरीताङ्गीं दीप्तामग्निशिखामिव॥ ४९, १४॥

सतुषारावृतां साभ्रां पूर्णचन्द्रप्रभामिव।
मध्येऽम्भसो दुराधर्षां दीप्तां सूर्यप्रभामिव॥ ४९, १५॥

सा हि गौतमवाक्येन दुर्निरीक्ष्या बभूव ह।
त्रयाणामपि लोकानां यावद् रामस्य दर्शनम्॥ ४९, १६॥

शापस्यान्तमुपागम्य तेषां दर्शनमागता।
राघवौ तु तदा तस्याः पादौ जगृहतुर्मुदा॥ ४९ १७॥

इसके पश्चात् सबके सब मिथिलाधीश के यज्ञवाट में पहुँचे, और श्रीरामने मुनि से टिकने का स्थान पूछा—

ऋषिवाटाश्च दृश्यन्ते शकटीशतसंकुलाः।
देशो विधीयतां ब्रह्मन्! यत्र वत्स्यामहे वयम्॥ ५०, ४॥

श्री विश्वामित्र जी ने उपयुक्त स्थान बताया—

रामस्य वचनं श्रुत्वा विश्वामित्रो महामुनिः।
निवासमकरोद् देशे विविक्तसलिलान्विते॥ ५०, ५॥

विश्वामित्र जी के आगमन सुन राजा जनक स्वागत सामान ले शतानन्द जी के साथ उपस्थित हुए—

विश्वामित्रमनुप्राप्तं श्रुत्वा नृपवरस्तदा ।
शतानन्दं पुरस्कृत्य पुरोहितमनिन्दितः ॥ ५०, ६ ॥
ऋत्विजोऽपि महात्मानस्त्वर्घ्यमादाय सत्वरम् ।
प्रत्युज्जगाम सहसा विनयेन समन्वितः ॥
विश्वामित्राय धर्मेण ददौ धर्मपुरस्कृतम् ॥ ५०, ७ ॥

महाराज जनक ने प्रणिपात हो ब्रह्मर्षि से कहा—

अद्य यज्ञफलं प्राप्तं भगवद्दर्शनान्मया ।
धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यस्य मे मुनिपुङ्गव ! ॥ ५०, १४ ॥
यज्ञोपसदनं ब्रह्मन् प्राप्तोऽसि मुनिभिः सह ।

स्वागतानन्तर दोनों कुमारों के विषय में राजाकी जानने की जिज्ञासा हुई—

इमौ कुमारौ भद्रं ते देवतुल्यपराक्रमौ ।
गजतुल्यगतीवीरौ शार्दूलवृषभोपमौ ॥ ५०, १७ ॥
पद्मपत्रविशालाक्षौ खड्गतूणीधनुर्धरौ ।
अश्विनाविव रूपेण समुपस्थितयौवनौ ॥ ५०, १८ ॥
यदृच्छयैव गां प्राप्तौ देवलोकादिवामरौ ।
कथं पद्भ्यामिह प्राप्तौ किमर्थं कस्य वा मुने ॥ ५०, १९ ॥

विश्वामित्र जी ने राजा की सुन्दर जिज्ञासा का समाधान पूर्ववृत्तान्त के साथ किया—

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा जनकस्य महात्मनः ।
न्यवेदयदमेयात्मा पुत्रौ दशरथस्य तौ ॥ ५०, २२ ॥
सिद्धाश्रमनिवासं च राक्षसानां वधं तथा ।
तत्रागमनमव्यग्रं विशालायाश्च दर्शनम् ॥ ५०, २३ ॥
अहल्यादर्शनं चैव गौतमेन समागमम् ।
महाधनुषि जिज्ञासां कर्तुमागमनं तथा ॥ ५०, २४ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा विश्वामित्रस्य धीमतः ।
हृष्टरोमा महातेजाः शतानन्दो महातपाः ॥ ५१, १ ॥

विश्वामित्रजी की बात सुनकर शतानन्द जी को अपार विस्मय हुआ। उनका सारा शरीर रोमाञ्चित हो गया। उन्होंने अपनी माता के द्वारा श्रीराम के सत्कार के सम्बन्ध में उतावले स्वर में ऋषि कौशिक से पूछा—

गौतमस्य सुतो ज्येष्ठस्तपसा द्योतितप्रभः ।
रामसंदर्शनादेव परं विस्मयमागतः ॥ ५१, २ ॥

'अपि रामे महातेजा मम माता यशस्विनी ।
वन्यैरुपाहरत् पूजां पूजार्हे सर्वदेहिनाम् ॥ ५१, ५ ॥

विश्वामित्र जी ने उन्हें आश्वस्त किया--

नातिक्रान्तं मुनिश्रेष्ठ यत् कर्तव्यं कृतं मया ।
संगता मुनिना पत्नी भार्गवेणेव रेणुका ॥ ५१, ११ ॥

फिर शतानन्द जी ने जिनका गोप्ता स्वयं महाप्रभावशाली विश्वामित्रजी हैं, श्रीराम के भाग्य को सराहा। इसके बाद उन्होंने विश्वामित्र जी की कर्मनिष्ठा का दिग्दर्शन कराया और उनसे कहा कि विश्वामित्र जी के राजत्व कालमें ब्रह्मर्षि वसिष्ठ से छेड़खानी हो गई। इन्होंने वसिष्ठजी की गाय, शवला को जबर्दस्ती छीन लिया। शवलाने उन्हें ब्रह्मशक्ति का प्रयोग करने को कहा। उन्होंने ऐसा ही किया। विश्वामित्र जी की हार हुई। इन्होंने पूर्णतया अनुभव किया कि ब्रह्मबल सभी-बलों से उत्कृष्ट होता है, और इसीलिये उन्होंने ब्रह्मर्षित्व की प्राप्ति के लिये एँड़ी चोटी एक कर दी। अनेक बाधाओं से लड़ते हुए भी अपने अभीष्ट को प्राप्त कर ही लिया उन्होने।

शबला ने वसिष्ठ जी से कहा—

न बलं क्षत्रियस्याहुर्ब्राह्मणा बलवत्तराः ।
ब्रह्मन् ! ब्रह्मबलं दिव्यं क्षात्राच्च बलवत्तरम् ॥ ५५, १४ ॥

भगवान् शिव को प्रसन्न कर विश्वामित्र जी ने बर मागा—

यदि तुष्टो महादेव धनुर्वेदो ममानघ ।
साङ्गोपाङ्गोपनिषदः सरहस्यः प्रदीयताम् ॥ ५५, १६ ॥

वसिष्ठ द्वारा ब्रह्मास्त्र (आणविक यन्त्र) का प्रयोग।

ब्रह्मास्त्रं ग्रसमानस्य वसिष्ठस्य महात्मनः ।
त्रैलोक्यमोहनं रौद्रं रूपमासीत् सुदारुणम् ॥ ५६, १७ ॥

रोमकूपेषु सर्वेषु वसिष्ठस्य महात्मनः ।
मरीच्य इव निष्पेतुरग्नेर्धूमाकुलार्चिषः ॥ ५६, १८ ॥

परास्त होने पर विश्वामित्र जी ने क्षात्रबल को धिक्कारा--

धिग् बलं क्षत्रियबलं ब्रह्मतेजो बलं बलम् ।
एकेन ब्रह्मदण्डेन सर्वास्त्राणि हतानि मे ॥ ५६, २३ ॥'

त्रिशंकु को सदेह स्वर्ग भेजने के लिये यज्ञानुष्ठान में वासिष्ठों का कथन भी सुना दिया, इस प्रकार शतानन्द जी ने मुनि की सभी कथा कह डाली—

वासिष्ठं यच्छ्रुतं सर्वं क्रोधपर्याकुलाक्षरम् ।
यथाह वचनं सर्वं श्रृणु त्वं मुनिपुङ्गव ॥ ५९, १३ ॥
क्षत्रियो याजको यस्य चण्डालस्य विशेषतः ।
कथं सदसि भोक्तारो हविस्तस्य सुरर्षय ॥ ५९, १४ ॥

ब्राह्मणा वा महात्मानो भुक्त्वा चाण्डलभोजनम् ।
कथं स्वर्गं गमिष्यन्ति विश्वामित्रेण पालिताः ॥ ५९, १५ ॥

दूसरे दिन प्रातःकाल राजा जनक ने मुनि का दर्शन किया और पूछा—

भगवन् स्वागतं तेऽस्तु किं करोमि तवानघ ।
भवानाज्ञापयतु मामाज्ञाप्यो भवता ह्यहम् ॥ ६६, ३ ॥

इस पर मुनि ने राजा से कहा—"राजन् ! ये कुमार धनुष देखना चाहते हैं, इन्हें दिखा दिया जाय"—

पुत्रौ दशरथस्येमौ क्षत्रियौ लोकविश्रुतौ ।
द्रष्टुकामौ धनुःश्रेष्ठं यदेतत्त्वयि तिष्ठति ॥ ६६, ५ ॥

एतद् दर्शय भद्रं ते कृतकामौ नृपात्मजौ ।
दर्शनादस्य धनुषो यथेष्टं प्रतियास्यतः ॥ ६६, ६ ॥

इस पर राजा जनक ने कहा कि धनुष दिखाऊंगा, यदि राम उसे उठा लें तो सीता से उनका ब्याह कर दूँगा—

तदेतन्मुनिशार्दूल धनुः परमभास्वरम् ।
रामलक्ष्मणयोश्चापि दर्शयिष्यामि सुव्रत ॥ ६६, २५ ॥

यद्यस्य धनुषो रामः कुर्यादारोपणं मुने ।
सुतामयोनिजां सीतां दद्यां दाशरथेरहम् ॥ ६६, २६ ॥

राजा ने सचिवों को धनुष मंगवाने का आदेश दिया—

ततः स राजा जनकः सचिवान् व्यादिदेश ह ।
धनुरानीयतां दिव्यं गन्धमाल्यानुलेपितम् ॥ ६७, २ ॥

मन्त्रियों ने धनुष को मंगवा कर राजा से कहा—

तामादाय सुमञ्जूषामायसीं यत्र तद्धनुः ।
सुरोपमं ते जनकमूचुर्नृपतिमन्त्रिणः ॥ ६७, ५ ॥
इदं धनुर्वरं राजन् पूजितं सर्वराजभिः ।

राजा ने मुनि से कहा कि इन राजकुमारों को उसे दिखा दें—

नैतत् सुरगणाः सर्वे सासुरा न च राक्षसाः ।
गन्धर्वयक्षप्रवराः सकिन्नरमहोरगाः ॥ ६७, ९ ॥
क्व गतिर्मानुषाणां च धनुषोऽस्य प्रपूरणे ।
आरोपणे समायोगे वेपने तोलने तथा ॥ ६७, १० ॥
तदेतद् धनुषां श्रेष्ठमानीतं मुनिपुङ्गव ।
दर्शयैतन्महाभाग अनयो राजपुत्रयोः ॥ ६७, ११ ॥

विश्वामित्र जी ने श्रीराम को धनुष की ओर देखने कहा—

वत्स राम धनुः पश्य इति राघवमब्रवीत् ॥ ६७, १२ ॥

महर्षि की आज्ञा से श्रीराम ने धनुष के निकट जाकर कहा कि, इसे छूता हूँ और उठाने तथा प्रत्यञ्चा चढ़ाने का भी यत्न करूँगा—

महर्षेर्वचनाद् रामो यत्र तिष्ठति तद्धनुः ।
मञ्जूषां तामपावृत्य दृष्ट्वा धनुरथाब्रवीत् ॥ ६७, १३ ॥
इदं धनुर्वरं दिव्यं संस्पृशामीह पाणिना ।
यत्नवांश्च भविष्यामि तोलने पूरणेऽपि वा ॥ ६७, १४ ॥

श्रीराम ने मुनि के आदेशानुसार इष्ट स्थान पर पहुँच उस धनुष को खेल खेल में उठा लिया और प्रत्यञ्चा चढ़ा उसे खींचा । वह मध्य भाग से घोर गर्जना के साथ टूट गया—

बाढमित्यब्रवीद् राजा मुनिश्च समभाषत ।
लीलया स धनुर्मध्ये जग्राह वचनान्मुनेः ॥ ६७, १५ ॥
पश्यतां नृसहस्राणां बहूनां रघुनन्दनः ।
आरोपयत् स धर्मात्मा सलीलमिव तद्धनुः ॥ ६७, १६ ॥
आरोपयित्वा मौर्वीं च पूरयामास तद्धनुः ।
तद् बभञ्ज धनुर्मध्ये नरश्रेष्ठो महायशाः ॥ ६७, १७ ॥

वहाँ राजा जनक, विश्वामित्र और दोनों राजकुमारों को छोड़ कर सब लोग उस शब्द से अचेत से हो गये—

निपेतुश्च नराः सर्वे तेन शब्देन मोहिताः ।
वर्जयित्वा मुनिवरं राजानं तौ च राघवौ ॥ ६७, १९ ॥

राजा जनक श्री राम के अनुपम पराक्रम से चकित थे । मुनि की अनुमति से उन्होंने इस शुभ समाचार को सुनाने तथा बुलाने के लिये महाराज दशरथ के पास अपने मन्त्रियों को भेजा—

भगवन् दृष्टवीर्यो मे रामो दशरथात्मजः ।
अत्यद्भुतमचिन्त्यं च अतर्कितमिदं मया ॥ ६७, २१ ॥

जनकानां कुले कीर्त्तिमाहरिष्यति मे सुता ।
सीता भर्तारमासाद्य रामं दशरथात्मजम् ॥ ६७, २२ ॥

भवतोऽनुमते ब्रह्मञ्शीघ्रं गच्छन्तु मन्त्रिणः ।
मम कौशिक भद्रं ते अयोध्यां त्वरिता रथैः ॥ ६७, २४ ॥

राजानं प्रश्रितैर्वाक्यैरानयन्तु पुरं मम ।
प्रदानं वीर्यशुल्कायाः कथयन्तु च सर्वशः ॥ ६७, २५ ॥

मुनिगुप्तौ च काकुत्स्थौ कथयन्तु नृपाय वै ।
प्रीतियुक्तं तु राजानमानयन्तु सुशीघ्रगाः ॥ ६७, २६ ॥

मिथिलाधीश के मन्त्रीगण ने अयोध्या पहुँचकर राजा दशरथ के दरवार में प्रवेश किया—

जनकेन समादिष्टा दूतास्ते क्लान्तवाहनाः ।
त्रिरात्रमुषिता मार्गे तेऽयोध्यां प्राविशन् पुरीम् ॥ ६८, १ ॥

ते राजवचनाद् गत्वा राजवेश्म प्रवेशिताः ।
ददृशुर्देवसंकाशं वृद्धं दशरथं नृपम् ॥ ६८, २ ॥

मन्त्रियों ने राजा को हाथ जोड़ कर विनीत भाव से उन्हें पुत्र विवाह में शीघ्र आने का निवेदन किया—

मैथिलो जनको राजा साग्निहोत्रपुरस्कृतः ।
मुहुर्मुहुर्मधुरया स्नेहसंयुक्तया गिरा ॥ ६८, ४ ॥
कुशलं चाव्ययं चैव सोपाध्यायपुरोहितम् ।
जनकस्त्वां महाराज पृच्छते सपुरःसरम् ॥ ६८, ५ ॥

पृष्ट्वा कुशलमव्यग्रं वैदेहो मिथिलाधिपः ।
कौशिकानुमते वाक्यं भवन्तमिदमब्रवीत् ॥ ६८, ६ ॥
पूर्वं प्रतिज्ञा विदिता वीर्यशुल्का ममात्मजा ।
राजानश्च कृतामर्षा निर्वीर्या विमुखीकृताः ॥ ६८, ७ ॥

सेयं मम सुता राजन् विश्वामित्रपुरस्कृतैः ।
यदृच्छयागतै राजन् निर्जिता तव पुत्रकैः ॥ ६८, ८ ॥

तच्च रत्नं धनुर्दिव्यं मध्ये भग्नं महात्मना ।
रामेण हि महाबाहो महत्यां जनसंसदि ॥ ६८, ९ ॥

सोपाध्यायो महाराज पुरोहितपुरस्कृतः ।
शीघ्रमागच्छ भद्रं ते द्रष्टुमर्हसि राघवौ ॥ ६८, ११ ॥

दूतों की बात सुन राजा को अतीव प्रसन्नता हुई । उन्होंने सभी आप्तजनों को समाचार सुनाया—

दूतवाक्यं तु तच्छ्रुत्वा राजा परमहर्षितः ।
वसिष्ठं वामदेवं च मन्त्रिणश्चैवमब्रवीत् । ६८, १४ ॥
दृष्टवीर्यस्तु काकुत्स्थो जनकेन महात्मना ।
सम्प्रदानं सुतायास्तु राघवे कर्तुमिच्छति ॥ ६८, १६ ॥
यदि वो रोचते वृत्तं जनकस्य महात्मनः ।
पुरीं गच्छामहे शीघ्रं मा भूत् कार्यस्य पर्ययः ॥ ६८, १७ ॥

मन्त्रियों ने कहा, "ठीक है" और राजा ने प्रातः यात्रा का आदेश दिया—

मन्त्रिणो बाढमित्याहुः सह सर्वैर्महर्षिभिः ।
सुप्रीतश्चाब्रवीद् राजा श्वो यात्रेति च मन्त्रिणः ॥ ६८, १८ ॥

रात बीत जाने पर भोर में राजाने सुमन्त्र को सारे चतुरङ्गिणी सेना साथ लेकर चलने को कहा । वसिष्ठ आदि ऋषिगण बारात में आगे चलें—

ततो रात्र्यां व्यतीतायां सोपाध्यायः सबान्धवः ।
राजा दशरथो हृष्टः सुमन्त्रमिदमब्रवीत् ॥ ६९, १ ॥
अद्य सर्वे धनाध्यक्षा धनमादाय पुष्कलम् ।
व्रजन्त्वग्रे सुविहिता नानारत्नसमन्विताः ॥ ६९, २ ॥
चतुरङ्गबलं चापि शीघ्रं निर्यातु सर्वशः ।
ममाज्ञा समकालं च यानं युग्ममनुत्तमम् ॥ ६९, ३ ॥
वसिष्ठो वामदेवश्च जाबालिरथ कश्यपः ।
मार्कण्डेयस्तु दीर्घायुर्ऋषिः कात्यायनस्तथा ॥ ६९, ४ ॥
एते द्विजाः प्रयान्त्वग्रे स्यन्दनं योजयस्व मे ।
यथा कालात्ययो न स्याद् दूता हि त्वरयन्ति माम् ॥ ६९, ५ ॥

बारात पहुँचने में चार दिन लग गये । पहुँचने पर जनकजी ने उनकी पूजा की—

वचनाच्च नरेन्द्रस्य सेना च चतुरङ्गिणी ।
राजानमृषिभिः सार्धं व्रजन्तं पृष्ठतोऽन्वगात् ॥ ६९, ६ ॥
गत्वा चतुरहं मार्गं विदेहानभ्युपेयिवान् ।
राजा च जनकः श्रीमाञ्छ्रुत्वा पूजामकल्पयत् ॥ ६९, ७ ॥

राजा जनक वृद्ध राजा दशरथ को पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने उनका हार्दिक स्वागत किया —

स्वागतं ते नरश्रेष्ठ दिष्ट्या प्राप्तोऽसि राघव ॥ ६९, ९ ॥
पुत्रयोरुभयोः प्रीतिं लप्स्यसे वीर्यनिर्जिताम्।
दिष्ट्या प्राप्तो महातेजा वसिष्ठो भगवानृषिः ॥ ६९, १० ॥
सह सर्वैर्द्विजश्रेष्ठैर्देवैरिव शतक्रतुः।
दिष्ट्या मे निर्जिता विघ्ना दिष्ट्या मे पूजितं कुलम् ॥६९, ११ ॥
राघवैः सह सम्बन्धाद् वीर्यश्रेष्ठैर्महाबलैः।
श्वः प्रभाते नरेन्द्र त्वं संवर्तयितुमर्हसि ॥ ६९, १२ ॥

राजा दशरथ ने उत्तर दिया—

प्रतिग्रहो दातृवशः श्रुतमेतन्मया पुरा।
यथा वक्ष्यसि धर्मज्ञ तत्करिष्यामहे वयम् ॥ ६९, १४ ॥

राजा जनक ने अपने भाई कुशध्वज को यज्ञ रक्षार्थ बुलवाया—

भ्राता मम महातेजा वीर्यवानतिधार्मिकः।
कुशध्वज इति ख्यातः पुरीमध्यवसच्छुभाम् ॥ ७०, २ ॥
वार्याफलकपर्यन्तां पिबन्निक्षुमतीं नदीम्।
सांकाश्यां पुष्पसंकाशां विमानमिव पुष्पकम् ॥ ७०, ३ ॥
तमहं द्रष्टुमिच्छामि यज्ञगोप्ता स मे मतः।

राजा की आज्ञा से कुशध्वज आ गये—

आज्ञया तु नरेन्द्रस्य आजगाम कुशध्वजः ॥ ७०, ४ ॥

राजा दशरथ जनक के भवन में आये—

मन्त्रिश्रेष्ठवचः श्रुत्वा राजा सर्षिगणस्तथा।
सबन्धुरगमत् तत्र जनको यत्र वर्तते ॥ ७०, १४ ॥

उसके बाद जनक ने रामको सीता और लक्ष्मण को उर्मिला देने का वचन दिया —

सीतां रामाय भद्रं ते ऊर्मिलां लक्ष्मणाय वै।
वीर्यशुल्कां मम सुतां सीतां सुरसुतोपमाम् ॥ ७१, २१ ॥
द्वितीयामूर्मिलां चैव त्रिर्वदामि न संशयः।
ददामि परमप्रीतो वध्वौ ते मुनिपुङ्गव ॥ ७१, २२ ॥
यथा ह्यद्य महाबाहो तृतीयदिवसे प्रभो।

फल्गुन्यामुत्तरे राजंस्तस्मिन् वैवाहिकं कुरु ।
रामलक्ष्मणयोरर्थे दानं कार्यं सुखोदयम् ॥ ७१, २४ ॥

जनक के निश्चयात्मक कथनानन्तर वसिष्ठ एवं विश्वामित्र ने कुशध्वज की दो पुत्रियों को भरत तथा शत्रुघ्न के लिये मांगा। (वक्ता विश्वामित्र जी थे)

तमुक्तवन्तं वैदेहं विश्वामित्रो महामुनिः ।
उवाच वचनं वीरं वसिष्ठसहितो नृपम् ॥ ७२, १ ॥

वक्तव्यं च नरश्रेष्ठ श्रूयतां वचन मम ।
भ्राता यवीयान् धर्मज्ञ एष राजा कुशध्वजः ॥ ७२, ४ ॥

अस्य धर्मात्मनो राजन् रूपेणाप्रतिमं भुवि ।
सुताद्वयं नरश्रेष्ठ पत्न्यर्थं वरयामहे ॥ ७२, ५ ॥

भरतस्य कुमारस्य शत्रुघ्नस्य च धीमतः ।
वरये ते सुते राजंस्तयोरर्थे महात्मनोः ॥ ७२, ६ ॥

पुत्रा दशरथस्येमे रूपयौवनशालिनः ।
लोकपालसमाः सर्वे देवतुल्यपराक्रमाः ॥ ७२, ७ ॥

राजा जनक की सहर्ष स्वीकृति—

विश्वामित्रवचः श्रुत्वा वसिष्ठस्य मते तदा ।
जनकः प्राञ्जलिर्वाक्यमुवाच मुनिपुङ्गवौ ॥ ७२, ९ ॥

"कुलं धन्यमिदं मन्ये येषां तौ मुनिपुङ्गवौ ।
सदृशं कुलसम्बन्धं यदाज्ञापयतः स्वयम् ॥ ७२, १० ॥

एवं भवतु भद्रं वः कुशध्वजसुते इमे ।
पत्न्यौ भजेतां सहितौ शत्रुघ्नभरतावुभौ ॥ ७२, ११ ॥

एकाह्ना राजपुत्रीणां चतसृणां महामुने ।
पाणीन् गृह्णन्तु चत्वारो राजपुत्रा महाबलाः ७२, १२ ॥

उत्तरे दिवसे ब्रह्मन् फल्गुनीभ्यां मनीषिणः ।
वैवाहिकं प्रशंसन्ति भगो यत्र प्रजापतिः ॥ ७२, १३ ॥

राजा जनक के कथनानन्तर राजा दशरथ ने कहा—

युवामसंख्येयगुणौ भ्रातरौ मिथिलेश्वरौ ।
ऋषयो राजसङ्घाश्च भवद्भ्यामभिपूजिताः ॥ ७२, १८ ॥

स्वस्ति प्राप्नुहि भद्रं ते गमिष्यामः स्वमालयम् ।
श्राद्धकर्माणि विधिवद्विधास्य इति चाब्रवीत् ॥ ७२, १९ ॥

जनवासे पर राजा दशरथ द्वारा गोदानादि क्रिया—

स सुतैः कृतगोदानैर्वृतः सन्नृपतिस्तदा ।
लोकपालैरिवाभाति वृतः सौम्यः प्रजापतिः ॥ ७२, २५ ॥

वैवाहिक कार्य सम्पादनार्थ द्वार पर आकर दशरथने जनक को सूचना भेजी और इसपर राजा जनक ने उत्तर दिया—

कः स्थितः प्रतिहारो मे कस्याज्ञां सम्प्रतीक्ष्यते ।
स्वगृहे को विचारोऽस्ति यथा राज्यमिदं तव ॥ ७३, १४ ॥
कृतकौतुकसर्वस्वा वेदिमूलमुपागताः ।
मम कन्या मुनिश्रेष्ठ दीप्ता वह्नेरिवार्चिषः ॥ ७३, १५ ॥
सद्योऽहं त्वत्प्रतीक्षोऽस्मि वेद्यामस्यां प्रतिष्ठितः ।
अविघ्नं क्रियतां सर्वं किमर्थं हि विलम्ब्यते ॥ ७३, १६ ॥

इस पर राजा दशरथ का समाजसहित भीतर प्रवेश—

तद् वाक्यं जनकेनोक्तं श्रुत्वा दशरथस्तदा ।
प्रवेशयामास सुतान् सर्वानृषिगणानपि ॥ ७३, १७ ॥

मण्डप पर कुमारिकाएं सर्वाभरणभूषित हो आ गईं। पहले सीता का पाणिग्रहण श्री राम के साथ हुआ—

ततः सीतां समानीय सर्वाभरणभूषिताम् ।
समक्षमग्नेः संस्थाप्य राघवाभिमुखे तदा ॥ ७३, २५ ॥
अब्रवीज्जनको राजा कौशल्यानन्दवर्धनम् ।
इयं सीता मम सुता सहधर्मचरी तव ॥ ७३, २६ ॥
प्रतीच्छ चैनां भद्रं ते पाणिं गृह्णीष्व पाणिना ।
पतिव्रता महाभागा छायेवानुगता सदा ॥ ७३, २७ ॥

लक्ष्मण का ऊर्मिला के साथ विवाह हुआ—

अब्रवीज्जनको राजा हर्षेणाभिपरिप्लुतः ।
लक्ष्मणागच्छ भद्रं ते ऊर्मिलामुद्यतां मया ॥ ७३, ३० ॥
प्रतीच्छ पाणिं गृह्णीष्व मा भूत् कालस्य पर्ययः ।

भरत का पाणिग्रहण माण्डवी के साथ हुआ—

तमेवमुक्त्वा जनको भरतं चाभ्यभाषत ॥ ७३, ३१ ॥
गृहाण पाणिं माण्डव्याः पाणिना रघुनन्दन ।

अन्त में शत्रुघ्न का पाणिग्रहण श्रुतिकीर्ति के साथ हुआ—

शत्रुघ्नं चापि धर्मात्मा अब्रवीन्मिथिलेश्वरः ॥ ७३, ३२ ॥
श्रुतिकीर्तेर्महाबाहो पाणिं गृह्णीष्व पाणिना ।
सर्वे भवन्तः सौम्याश्च सर्वे सुचरितव्रताः ॥ ७३, ३३ ॥
पत्नीभिः सन्तु काकुत्स्थाः मा भूत् कालस्य पर्ययः ॥ ७३, ३४ ॥

विवाहानन्तर जनवासे पर सबों का प्रस्थान—

ईदृशे वर्तमाने तु तूर्योद्घुष्टनिनादिते ।
त्रिरग्निं ते परिक्रम्य ऊहुर्भार्या महौजसः ॥ ७३, ३९ ॥
अथोपकार्यं जग्मुस्ते सभार्या रघुनन्दनाः ।
राजाऽप्यनुययौ पश्यन् सर्षिसङ्घः सबान्धवः ॥ ७३, ४० ॥

विवाह के दूसरे दिन भोर में विश्वामित्र जी का वहाँ से प्रस्थान—

अथ रात्र्यां व्यतीतायां विश्वामित्रो महामुनिः ।
आपृष्ट्वा तौ च राजानौ जगामोत्तरपर्वतम् ॥ ७४, १ ॥

राजा दशरथ का भी अपने पुरी के लिये प्रस्थान—

विश्वामित्रे गते राजा वैदेहं मिथिलाधिपम ।
आपृष्ट्वैव जगामाशु राजा दशरथः पुरीम् ॥ ७४, २ ॥

राजा जनक द्वारा अभूतपूर्व विदाई का दान—

अथ राजा विदेहानां ददौ कन्याधनं बहु ।
गवां शतसहस्राणि बहूनि मिथिलेश्वरः ॥ ७४, ३ ॥
कम्बलानां च मुख्यानां क्षौमान् कोट्याम्बराणि च ।
हस्त्यश्वरथपादातं दिव्यरूपं स्वलंकृतम् ॥ ७४, ४ ॥

मार्ग में अशकुनचिह्न को देख कर राजा का वसिष्ठ जी से पूछना और वसिष्ठ जी का समाधान करना—

गच्छन्तं तु नरव्याघ्रं सर्षिसङ्घं सराघवम् ।
घोरास्तु पक्षिणो वाचो व्याहरन्ति समन्ततः ॥ ७४, ८ ॥
भौमाश्चैव मृगाः सर्वे गच्छन्ति स्म प्रदक्षिणम ।
तान् दृष्ट्वा राजशार्दूलो वशिष्ठं पर्यपृच्छत ॥ ७४, ९ ॥
असौम्याः पक्षिणो घोरा मृगाश्चापि प्रदक्षिणाः ।
किमिदं हृदयोत्कम्पि मनो मम विषीदति ॥ ७४, १० ॥

उपस्थितं भयं घोरं दिव्यं पक्षिमुखाच्च्युतम् ।
मृगाः प्रशमयन्त्येते सन्तापस्त्यज्यतामयम् ॥ ७४, १२ ॥

परशुराम जी का पदार्पण—

ददर्श भीमसंकाशं जटामण्डलधारिणम् ।
भार्गवं जामदग्नेयं राजा राजविमर्दनम् ॥ ७४, १७ ॥
स्कन्धे चासज्ज्य परशुं धनुर्विद्युद्गुणोपमम् ।
प्रगृह्य शरमुग्रं च त्रिपुरघ्नं यथा शिवम् ॥ ७४, १९ ॥

पूजा ग्रहणानन्तर परशुराम जी ने कहा कि, हे राम ! आप हमारे धनुष को पहले उठा लें तो मैं आपसे लड़ूँगा—

प्रतिगृह्य तु तां पूजामृषिदत्तां प्रतापवान् ।
रामं दाशरथिं रामो जामदग्न्योऽभ्यभाषत ॥ ७४, २४ ॥
राम दाशरथे वीर वीर्यं ते श्रूयतेऽद्भुतम् ।
धनुषो भेदनं चैव निखिलेन मया श्रुतम् ॥ ७५, १ ॥
तदद्भुतमचिन्त्यं च भेदनं धनुषस्तथा ।
तच्छ्रुत्वाहमनुप्राप्तो धनुर्गृह्यापरं शुभम् ॥ ७५, २ ॥
तदिदं घोरसंकाशं जामदग्न्यं महद्धनुः ।
पूरयस्व शरेणैव स्वबलं दर्शयस्व च ॥ ७५, ३ ॥
तदहं ते बलं दृष्ट्वा धनुषोऽप्यस्य पूरणे ।
द्वन्द्वयुद्धं प्रदास्यामि वीर्यश्लाघ्यमहं तव ॥ ७५, ४ ॥

राजा दशरथ का परशुराम जी से निवेदन—

मम सर्वविनाशाय सम्प्राप्तस्त्वं महामुने ।
न चैकस्मिन् हते रामे सर्वे जीवामहे वयम् ॥ ७५, ९ ॥

उनकी बातों की उपेक्षा कर मुनि राम से ही बोलते रहे—

अनादृत्य तु तद्वाक्यं राममेवाभ्यभाषत ॥ ७५, १० ॥
तदेवं वैष्णवं राम ! पितृपैतामहं महत् ।
क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य गृह्णीष्व धनुरुत्तमम् ॥ ७५, २७ ॥
योजयस्व धनुः श्रेष्ठे शरं परपुरंजय ।
यदि शक्तोऽसि काकुत्स्थ द्वन्द्वं दास्यामि ते ततः ॥ ७५, २८ ॥

इसपर दशरथात्मज श्रीराम ने परशुराम से अपने पराक्रम देखने कहा—

कृतवानसि यत् कर्म श्रुतवानस्मि भार्गव ।
अनुरुध्यामहे ब्रह्मन् पितुरानृण्यमास्थितः ॥ ७६, २ ॥

वीर्यहीनमिवाशक्तं क्षत्रधर्मेण भार्गव ।
अवजानासि मे तेजः पश्य मेऽद्य पराक्रमम् ॥ ७६, ३ ॥

ऐसा कह श्रीराम ने परशुराम के हाथों से वैष्णव धनुष, बाण सहित ले लिया । धनुष पर बाण चढ़ाकर उनसे बोले—"बताइये आपकी अव्याहत गति नष्ट कर दूँ, अथवा तपोबल से अर्जित पुण्यलोक ?"

इत्युक्त्वा राघवः क्रुद्धो भार्गवस्य वरायुधम् ।
शरं च प्रतिजग्राह हस्ताल्लघुपराक्रमः ॥ ७६, ४ ॥
आरोप्य स धनू रामः शरं सज्यं चकार ह ।
जामदग्न्यं ततो रामं रामः क्रुद्धोऽब्रवीदिदम् ॥ ७६, ५ ॥
"ब्राह्मणोऽसीति पूज्यो मे विश्वामित्रकृतेन च ।
तस्माच्छक्तो न ते राम मोक्तुं प्राणहरं शरम् ॥ ७६, ६ ॥
इमां वा त्वद्गतिं राम तपोबलसमार्जितान् ।
लोकानप्रतिमान् वापि हनिष्यामीति मे मतिः ॥ ७६, ७ ॥

परशुराम ने अपना पुण्यलोक ही नष्ट करने को कहा, और उन्होंने यह भी कहा कि आपसे हारखाने के लिये मुझे कोई लज्जा नहीं है, आप तो स्वयं विष्णु हैं ।

लोकास्त्वप्रतिमा राम निर्जितास्तपसा मया ।
जहि ताञ्छरमुख्येन मा भूत् कालस्य पर्ययः ॥ ७६, १६ ॥
"अक्षय्यं मधुहन्तारं जानामि त्वां सुरेश्वरम् ।
धनुषोऽस्य परामर्शात् स्वस्ति तेऽस्तु परंतप ॥ ७६, १७ ॥
एते सुरगणाः सर्वे निरीक्षन्ते समागताः ।
त्वामप्रतिमकर्माणमप्रतिद्वन्द्वमाहवे ॥ ७६, १८ ॥
न चेयं तव काकुत्स्थ व्रीडा भवितुमर्हति ।
त्वया त्रैलोक्यनाथेन यदहं विमुखीकृतः" ॥ ७६, १९ ॥

परशुराम के आग्रह पर उनके देखते उनका पुण्यलोक नष्ट कर दिया गया और वे राम की प्रदक्षिणा कर महेन्द्र पर्वत पर चले गये—

स हतान् दृश्य रामेण स्वाँल्लोकाँस्तपसार्जितान् ।
जामदग्न्यो जगामाशु महेन्द्रं पर्वतोत्तमम् ॥ ७६, २२ ॥
रामं दाशरथिं रामो जामदग्न्यः प्रपूजितः ।
ततः प्रदक्षिणीकृत्य जगामात्मगतिं प्रभुः ॥ ७६, २४ ॥

मुनि के चले जाने पर श्रीराम ने सविनय अपने पूज्य पितासे प्रस्थान करने को कहा—

अभिवाद्य ततो रामो वशिष्ठप्रमुखानृषीन् ।
पितरं विकलं दृष्ट्वा प्रोवाच रघुनन्दनः ॥ ७७, २ ॥
"जामदग्न्यो गतो रामः प्रयातु चतुरङ्गिणी ।
अयोध्याभिमुखी सेना त्वया नाथेन पालिता" ॥ ७७, ३ ॥

अयोध्यापुरी पहुँच कर यथाक्रम लोग मङ्गलायोजन में जुट गये और तत्पश्चात् उन्होंने विविध हर्षोल्लास मनाया—

रामस्य वचनं श्रुत्वा राजा दशरथः सुतम् ।
बाहुभ्यां सम्परिष्वज्य मूर्ध्न्युपाघ्राय राघवम् ॥ ७७, ४ ॥
चोदयामास तां सेनां जगामाशु ततः पुरीम् ।
पताकाध्वजिनीं रम्यां तूर्योद्घुष्टनिनादिताम् ॥ ७७, ६ ॥
सम्पूर्णां प्राविशद् राजा जनौघैः समलंकृताम् ।
पौरैः प्रत्युद्गतो दूरं द्विजैश्च पुरवासिभिः ॥ ७७, ८ ॥
पुत्रैरनुगतः श्रीमाञ्श्रीमद्भिश्च महायशाः ।
प्रविवेश गृहं राजा हिमवत्सदृशं प्रियम् ॥ ७७, ९ ॥
ननन्द स्वजनै राजा गृहे कामैः सुपूजितः ।
कौशल्या च सुमित्रा च कैकेयी च सुमध्यमा ॥ ७७, १० ॥
वधू प्रतिगृहे युक्ता याश्चान्या राजयोषितः ।
ततः सीतां महाभागामूर्मिलां च यशस्विनीम् ॥ ७७, ११ ॥
कुशध्वजसुते चोभे जगृहुर्नृपयोषितः ।
मङ्गलालापनैर्होमैः शोभिताः क्षौमवाससः ॥ ७७, १२ ॥
देवतायतनान्याशु सर्वास्ताः प्रत्यपूजयन् ।
अभिवाद्याभिवाद्यांश्च सर्वा राजसुतास्तदा ॥ ७७ १३ ॥
रेमिरे मुदिताः सर्वा भर्तृभिर्मुदिता रहः ॥ ७७, १४ ॥

कुछ दिनों के बाद वृद्ध राजा ने भरत को बुलाकर कहा कि, "तुम्हारे युधाजित् मामा तुम्हें ननिहाल ले जाने के लिए आये हुए हैं—

कस्यचित्त्वथ कालस्य राजा दशरथः सुतम् ।
भरतं कैकयीपुत्रमब्रवीद् रघुनन्दनः ॥ ७७, १५ ॥

"अयं केकयराजस्य पुत्रौ वसति पुत्रक।
त्वां नेतुमागतो वीरो युधाजिन्मातुलस्तव" ॥ ७७, १६ ॥

भरत ने पिता एवं भाई श्रीराम से अनुमति लेकर शत्रुघ्न के साथ ननिहाल को प्रस्थान किया—

आपृच्छ्य पितरं शूरो रामं चाक्लिष्टकारिणम्।
मातृंश्चापि नरश्रेष्ठः शत्रुघ्नसहितो ययौ ॥ ७७, १८ ॥

उसके पश्चात् श्रीरामने पिता की आज्ञा से राज्य का सारा कार्य सुव्यवस्थित ढङ्ग से सञ्चालन कर सभी प्रजाओं के हृदय को जीत लिया, इससे पिता एवं प्रजाओं को अभूतपूर्व प्रसन्नता हुई—

गते च भरते रामो लक्ष्मणश्च महाबलः।
पितरं देवसंकाशं पूजयामासतुस्तदा ॥ ७७, २० ॥

पितुराज्ञां पुरस्कृत्य पौरकार्याणि सर्वशः।
चकार रामः सर्वाणि प्रियाणि च हितानि च ॥ ७७, २१ ॥

एव दशरथः प्रीतो ब्राह्मणा नैगमास्तथा।
रामस्य शीलवृत्तेन सर्वे विषयवासिनः ॥ ७७, २३ ॥

इत्यार्षे संक्षिप्तवाल्मीकिरामायणे बालकाण्डम् ।

अथ अयोध्याकाण्डम्

श्रीराम के गुण—

अरोगस्तरुणो वाग्मी वपुष्मान् देशकालवित् ।
लोके पुरुषसारज्ञः साधुरेको विनिर्मितः ॥ १, १८ ॥

राजा दशरथ की आकाँक्षा; लोकतन्त्रता की भावना (राज सभा में विचार)

अनेन श्रेयसा सद्यः संयोक्ष्येऽहमिमां महीम् ।
गतक्लेशो भविष्यामि सुते तस्मिन् निवेश्य वै ॥ २, १४ ॥

यदिदं मेऽनुरूपार्थं मया साधु सुमन्त्रितम् ।
भवन्तो मेऽनुमन्यन्तां कथं वा करवाण्यहम् ॥ २, १५ ॥

यद्यप्येषा मम प्रीतिर्हितमन्यद् विचिन्त्यताम् ।
अन्या मध्यस्थचिन्ता तु विमर्दाभ्यधिकोदया । २, १६ ॥

राजा के उपरोक्त विचार सुन समासदों एवं प्रजावर्ग को अतीव प्रसन्नता हुई । सबों ने सहर्ष अनुमोदन किया । श्रीराम के यौवराज्य की पूर्ण रूप से तैयारी होने लगी । किन्तु इस समाचार से मन्थरा नाम की कैकेयी की प्रिय दासी को बड़ा मनः खेद हुआ । उसने यह समाचार अपनी स्वामिनी कैकेयी को सुनाया । इस शुभ समाचार से उसे अतीव प्रसन्नता हुई और उसने दासी को पुरस्कृत किया—

दत्त्वा त्वाभरणं तस्यै कुब्जायै प्रमदोत्तमा ।
कैकेयी मन्थरां हृष्टा पुनरेवाब्रवीदिदम् ॥ ७, ३३ ॥

"इदं तु मन्थरे मह्यमाख्यातं परमं प्रियम् ।
एतन्मे प्रियमाख्यातं किं वा भूयः करोमि ते ॥ ७, ३४ ॥

रामे वा भरते वाहं विशेषं नोपलक्षये ।
तस्मात् तुष्टास्मि यद्राजा रामं राज्येऽभिषेक्ष्यति ॥ ७, ३५ ॥

न मे परं किंचिदितो वरं पुनः प्रियं प्रियार्हे सुवचं वचोऽमृतम् ।
तथा ह्यवोचस्त्वमतः प्रियोत्तरं वरं परं ते प्रददामि तं वृणु ॥ ७, ३६ ॥

इस पर मन्थरा ने (भावी अनिष्ट का संकेत देती हुई)कैकेयी से कहा—

श्रूयते हि द्रुमः कश्चिच्छेत्तव्यो वनजीवनैः ।
संनिकर्षादिषीकाभिर्मोचितः परमाद् भयात् ॥ ८, ३० ॥

यदा हि रामः पृथिवीमवाप्स्यते ध्रुवं प्रणष्टो भरतो भविष्यति ।
अतो हि संचिन्तय राज्यमात्मजे परस्य चैवास्य विवासकारणम् ॥८,३९॥

अनिष्ट आने के पूर्व ही उसके निवारण का यत्न बताया उसने—

गतोदके सेतुबन्धो न कल्याणि विधीयते ।
उत्तिष्ठ कुरु कल्याणं राजानमनुदर्शय ॥ ९, ५४ ॥

फिर तो कैकेयी मन्थरा की माया से मोहित ही हो गई । उसके परामर्शानुसार कोप भवन में जाकर अपने भूषण-वसनों का त्याग कर दिया । राजा आये, उसकी दशा देखी । उन्होंने प्रतिज्ञा की कि वह उसकी प्रसन्नता के लिये हर काम करेंगे । उसने प्रतिज्ञा करने के बाद राजा से भरत के लिये राज्य और राम के १४ वर्षों का वनवास मांगा । राजा ने कभी भी कैकेयी से इस प्रकार छले जाने की आशंका नहीं की थी, वे मूर्च्छित से हो गये । उस अवस्था में कैकेयी ने अनेक उदाहरणों द्वारा सत्य न छोड़ने के लिए राजा से कहा—

आहुः सत्यं हि परमं धर्मं धर्मविदो जनाः ।
सत्यमाश्रित्य च मया त्वं धर्मं प्रतिचोदितः ॥ १४, ३ ॥

संश्रुत्य शैब्यः श्येनाय स्वां तनुं जगतीपतिः ।
प्रदाय पक्षिणे राजा जगाम गतिमुत्तमाम् ॥ १४, ४ ॥

तथा ह्यलर्कस्तेजस्वी ब्राह्मणे वेदपारगे ।
याचमाने स्वके नेत्रे उद्धृत्याविमना ददौ ॥ १४, ५ ॥

सरितां तु पतिः स्वल्पां मर्यादां सत्यमन्वितः ।
सत्यानुरोधात् समये वेलां स्वां नातिवर्तते ॥ १४, ६ ॥

सत्यमेकपदं ब्रह्म सत्ये धर्मः प्रतिष्ठितः ।
सत्यमेवाक्षया वेदाः सत्येनावाप्यते परम् ॥ १४, ७ ॥

सत्यं समनुवर्तस्व यदि धर्मे धृता मतिः ।
स वरः सफलो मेऽस्तु वरदो ह्यभिसत्तम ॥ १४, ८ ॥

धर्मस्यैवाभिकामार्थं मम चैवाभिचोदनात् ।
प्रव्राजय सुतं रामं त्रिःखलु त्वां ब्रवीम्यहम् ॥ १४, ९ ॥

समयं च ममार्येमं यदि त्वं न करिष्यसि ।
अग्रतस्ते परित्यक्ता परित्यक्ष्यामि जीवितम् ॥ १४, १० ॥

अनेक अनुनय-विनय करने पर भी जब राजा दशरथ असफल रहे, तब उन्होंने कठोर वाक्यों में (पुत्र सहित कैकेयी के त्याग) आदेश दिया—

विकलाभ्यां च नेत्राभ्यामपश्यन्निव भूमिपः ।
कृच्छ्राद् धैर्येण संस्तभ्य कैकेयीमिदमब्रवीत् ॥ १४,१३ ॥
"यस्ते मन्त्रकृतः पाणिरग्नौ पापे मया धृतः ।
संत्यजामि स्वजं चैव तव पुत्रं सह त्वया" ॥

पुत्र सहित कैकेयी को अपने श्राद्धकार्य में भाग लेने को मना ही किया—

"रामाभिषेकसम्भारैस्तदर्थमुपकल्पितैः ।
रामः कारयितव्यो मे मृतस्य सलिलक्रियाम्" ॥ १४, १६ ॥
"सपुत्रया त्वया नैव कर्तव्या सलिलक्रिया" ॥ १४, १ ॥

बाहर इस वृतान्त को तो कोई जानता ही न था; अतः प्रभात में राजा के समक्ष आकर सुमन्त्र ने उन्हें उद्‌बोधित किया (परम्परा रीत्यनुसार)—

यथा नन्दति तेजस्वी सागरे भास्करोदये ।
प्रीतः प्रीतेन मनसा तथा नन्दय नस्ततः ॥
इन्द्रमस्यां तु वेलायामभितुष्टाव मातलिः । १४, ४७ ॥
सोऽजयत् दानवान् सर्वास्तथा त्वां बोधयाम्यहम् ॥ १४, ४८ ॥

वेदाः सहाङ्गा विद्याश्च यथा ह्यात्मभुवं प्रभुम ।
ब्रह्माणं बोधयन्त्यद्य तथा त्वां बोधयाम्यहम् ॥ १४, ४९ ॥

आदित्यः सह चन्द्रेण यथा भूतधरां शुभाम् ।
बोधयत्यद्य पृथिवीं तथा त्वां बोधयाम्यहम् ॥ १४, ५० ॥

उत्तिष्ठ सुमहाराज कृतकौतुकमङ्गलः ।
विराजमानो वपुषा मेरोरिव दिवाकरः ॥ १४, ५१ ॥

सोमसूर्यौ च काकुत्स्थ शिववैश्रवणावपि ।
वरुणश्चाग्निरिन्द्रश्च विजयं प्रदिशन्तु ते ॥ १४, ५२ ॥

गता भगवती रात्रिः कृतं कृत्यमिदं तव ।
बुध्यस्व नृपशार्दूल कुरु कार्यमनन्तरम् ॥ १४, ५३ ॥

सुमन्त्र ने फिर आकर राजा को संवाद दिया—

स्वयं वसिष्ठो भगवान् ब्राह्मणैः सह तिष्ठति ।
क्षिप्रमाज्ञाप्यतां राजन् राघवस्याभिषेचनम् ॥ १४,५५ ॥

व्याकुल राजा ने सूत से कहा—

ततस्तु राजा तं सूतं सन्नहर्षः सुतं प्रति ।
शोकरक्तेक्षणः श्रीमानुद्वीक्ष्योवाच धार्मिकः ॥ १४, ५८ ॥

"वाक्यैस्तु खलु मर्माणि मम भूयो निकृन्तसि ॥ १४, ५९ ॥

जब राजा ने स्पष्टतः कुछ नहीं कहा, तब अनजान सुमन्त्र को कैकेयी ने श्रीरामको राजा के पास लाने कहा—

यदा वक्तुं स्वयं दैन्यान्न शशाक महीपतिः ।
तदा सुमन्त्रं मन्त्रज्ञा कैकयी प्रत्युवाच ह ॥ १४, ६० ॥

"सुमंत्र ! राजा रजनीं रामहर्षसमुत्सुकः ।
प्रजागरपरिश्रान्तो निद्रावशमुपागतः ॥ १४, ६२ ॥

तद्गच्छ त्वरितं सूत राजपुत्रं यशस्विनम् ।
राममानय भद्रं ते नात्र कार्या विचारणा" ॥ १४, ६३ ॥

सुमन्त्र ने रानी से कहा 'देवि' ! राजा की आज्ञा के बिना कैसे जाऊं" ? तब राजा ने भी कहा—राम को लाओ'—

अश्रुत्वा राजवचनं कथं गच्छामि भामिनि ।
तच्छ्रुत्वा मंत्रिणो वाक्यं राजा मन्त्रिणमब्रवीत् ॥ १४, ६४ ॥
"सुमन्त्र रामं द्रक्ष्यामि शीघ्रमानय सुन्दरम्" ।
स मन्यमानः कल्याणं हृदयेन ननन्द च ॥ १४, ६५ ॥

सुमन्त्र ने राजशासन से तुरन्त प्रस्थान किया—

निर्जगाम च स प्रीत्या त्वरितो राजशासनात्
सुमन्त्रश्चिन्तयामास त्वरितं चोदीतस्तया ॥ १४, ६६ ॥

राम के भवन पर पहुँच सुमन्त्र ने श्रीराम को सूचना दी—

ते समीक्ष्य समायान्तं रामप्रियचिकीर्षवः ।
सहसोत्पतिताः सर्वे ह्यासनेभ्यः ससम्भ्रमाः ॥ १६, ४ ॥

तानुवाच विनीतात्मा सूतपुत्रः प्रदक्षिणः ।
क्षिप्रमाख्यात रामाय सुमन्त्रो द्वारि तिष्ठति" ॥ १६, ५ ॥

श्रीराम ने सुमन्त्र को अन्दर बुलवा लिया, जहाँ मन्त्री ने सम्वाद सुनाया—

प्रतिवेदितमाज्ञाय सूतमभ्यन्तरं पितुः ।
तत्रैवानाययामास राघवः प्रियकाम्यया ॥ १६, ७ ॥

तं तपन्तमिवादित्यमुपपन्नं स्वतेजसा ।
ववन्दे वरदं वन्दी विनयज्ञो विनीतवत् ॥ १६, ११, ॥
"कौसल्या सुप्रजा राम पिता त्वां द्रष्टुमिच्छति ।
महिष्यापि हि कैकेय्या गम्यतां तत्र मा चिरम्"॥ १६, १३ ॥

श्री राम ने यह शुभ समाचार सीता को सुनाया—

एवमुक्तस्तु संहृष्टो नरसिंहो महाद्युतिः ।
ततः सम्मानयामास सीतामिदमुवाच ह ।। १६, १४ ।।
देवि देवश्च देवी च समागम्य मदन्तरे ।
मन्त्रयेते ध्रुवं किंचिदभिषेचनसंहितम् ।। १६, १५ ।।

सीता का मङ्गलवचन—

पतिसम्मानिता सीता भर्तारमसितेक्षणा ।
आद्वारमनुवव्राज मङ्गलान्यभिदध्युषी ।। १६, २१ ।।
राज्यं द्विजातिभिर्जुष्टं राजसूयाभिषेचनम् ।
कर्तुमर्हति ते राजा वासवस्येव लोककृत् ।। १६, २२ ।।
दीक्षितं व्रतसम्पन्नं वराजिनधरं शुचिम् ।
कुरङ्गश्रृङ्गपाणिं च पश्यन्ती त्वां भजाम्यहम् ।। ४६, २३ ।।
पूर्वां दिशं वज्रधरो दक्षिणां पातु ते यमः ।
वरुणः पश्चिमामाशां धनेशस्तूत्तरां दिशम् ।। १२, २४ ।।

मार्ग में नारियों का अभिनन्दन—

नूनं नन्दति ते माता कौसल्या मातृनन्दन ।
पश्यन्ती सिद्धयात्रं त्वां पित्र्यं राज्यमुपस्थितम् ।। १६, ३९ ।।

राम का पिता के निकट प्रवेश—

तस्मिन् प्रविष्टे पितुरन्तिकं तदा जनः स सर्वो मुदितो नृपात्मजे ।
प्रतीक्षते तस्य पुनः स्म निर्गमं यथोदये चन्द्रमसः सरित्पतिः ।।१६,२२।।

दुःखी पिता को देखकर प्रणाम किया रामने, तत्पश्चात् माता कैकेयी को भी—

स ददर्शासने रामो विषण्णं पितरं शुभे ।
कैकेय्या सहितं दीनं मुखेन परिशुष्यता ।। १८, १ ।।
स पितुश्चरणौ पूर्वमभिवाद्य विनीतवत् ।
ततो ववन्दे चरणौ कैकेय्याः सुसमाहितः ।। १८, २ ।।

राजा ने सिर्फ 'राम' कहा और न तो वे बोल सके और न देख ही—

रामेत्युक्त्वा तु वचनं वाष्पपर्याकुलेक्षणः ।
शशाक नृपतिर्दीनो नेक्षितुं नाभिभाषितुम् ।। १८, ३ ।।

श्री राम को भी चिन्ता हुई कि, क्यों पिताजी आज न तो मुझसे बोलते हैं और न अभिनन्दन ही करते हैं"—

चिन्तयामास चतुरो रामः पितृहिते रतः ।
किंस्विदद्यैव नृपतिर्न मां प्रत्यभिनन्दति ॥ १८, ८ ॥

अन्यदा मां पिता दृष्ट्वा कुपितोऽपि प्रसीदति ।
तस्य मामद्य सम्प्रेक्ष्य किमायासः प्रवर्तते ॥ १८, ९ ॥

पिता की अप्रसन्नता के कारण निरूपणार्थ श्रीराम का भिन्न २ अनुमान जानकारी प्राप्त कराने के लिए कैकेयी से श्रीराम का आग्रह—

कच्चिन्मया नापराद्धमज्ञानाद् येन मे पिता ।
कुपितस्तन्ममाचक्ष्व त्वमेवैनं प्रसादय ॥ १८, ११ ॥

शारीरो मानसो वापि कच्चिदेनं न बाधते ।
संतापो वाभितापो वा दुर्लभं हि सदा सुखम् ॥ १८, १३ ॥

कच्चिन्न किंचिद् भरते कुमारे प्रियदर्शने ।
शत्रुघ्ने वा महासत्त्वे मातॄणां वा ममाशुभम् ॥ १८, १४ ॥

अतोषयन् महाराजमकुर्वन् वा पितुर्वचः ।
मुहूर्तमपि नेच्छेयं जीवितुं कुपिते नृपे ॥ १८, १५ ॥

यतो मूलं नरः पश्येत् प्रादुर्भावमिहात्मनः ।
कथं तस्मिन् न वर्तेत प्रत्यक्षे सति दैवते ॥ १८, १६ ॥

कैकेयी ने कहा, "यदि तुम राजा की कही बातों को मानने के लिये तैयार होओ तो मैं सारी बातें कहूँगी"।

यदि तत् वक्ष्यसे राजा शुभं वा यदि वाशुभम् ।
करिष्यसि ततः सर्वमाख्यास्यामि पुनस्त्वहम् ॥ १८, २५ ॥

यदि त्वभिहितं राज्ञा त्वयि तन्न विपत्स्यते ।
ततोऽहमभिधास्यामि न ह्येष त्वयि वक्ष्यति ॥ १८, २६ ॥

श्रीराम ने माँ कैकेयी से कहा "पिताजी के लिये सब कुछ कर सकता हूँ। तुम उनका अभिप्राय कह सुनाओ, मैं उसका पालन करूँगा।"

एतत् तु वचनं श्रुत्वा कैकेय्या समुदाहृतम् ।
उवाच व्यथितो रामस्तां देवीं नृपसंनिधौ ॥ १८, २७ ॥

अहो धिङ् नार्हसे देवि वक्तुमामीदृशं वचः ।
अहं हि वचनाद् राज्ञः पतेयमपि पावके ॥ १८, २८ ॥

भक्षयेयं विषं तीक्ष्णं पतेयमपि चार्णवे।
नियुक्तो गुरुणा पित्रा नृपेण च हितेन च ॥ १८, २९ ॥
तद् ब्रूहि वचनं देवि राज्ञो यदभिकाङ्क्षितम्।
करिष्ये प्रतिजाने च रामो द्विर्नाभिभाषते ॥ १८, ३० ॥

कैकेयी ने राम से निधड़क कठोर शब्दों में सारी बातें कह सुनाई—

तमार्जवसमायुक्तमनार्या सत्यवादिनम्।
उवाच रामं कैकेयी वचनं भृशदारुणम् ॥ १८, ३१ ॥
पुरा देवासुरे युद्धे पित्रा ते मम राघव।
रक्षितेन वरौ दत्तौ सशल्येन महारणे ॥ १८, ३२ ॥
तत्र मे याचितो राजा भरतस्याभिषेचनम्।
गमनं दण्डकारण्ये तव चाद्यैव राघव ॥ १८, ३३ ॥
यदि सत्यप्रतिज्ञं त्वं पितरं कर्तुमिच्छसि।
आत्मानं च नरश्रेष्ठ मम वाक्यमिदं शृणु ॥ १८, ३४ ॥
संनिदेशे पितुस्तिष्ठ यथानेन प्रतिश्रुतम्।
त्वयारण्यं प्रवेष्टव्यं नव वर्षाणि पञ्च च ॥ १८ ३५ ॥
भरतश्चाभिषिच्येत यदेतदभिषेचनम्।
त्वदर्थे विहितं राज्ञा तेन सर्वेण राघव ॥ १८, ३६ ॥
सप्त सप्त च वर्षाणि दण्डकारण्यमाश्रितः।
अभिषेकमिदं त्यक्त्वा जटाचीरधरो भव ॥ १८, ३७ ॥

कैकेयी के ऐसे कठोर वचन को सुनकर भी श्रीराम को कोई विकार नहीं हुआ—

इतीव तस्यां परुषं वदन्त्यां न चैव रामः प्रविवेश शोकम्।
प्रविव्यथे चापि महानुभावो राजा च पुत्रव्यसनाभितप्तः ॥१८,४१॥

श्रीराम ने कहा—"अच्छा मैं जटाचीर धारण कर वन जाऊँगा, किन्तु ऐसा राजा ने नहीं कहा ?"

एवमस्तु गमिष्यामि वनं वस्तुमहं त्वितः।
जटाचीरधरो राज्ञः प्रतिज्ञामनुपालयन् ॥ १९, २ ॥
अलीकं मानसं त्वेकं हृदयं दहते मम।
स्वयं यन्नाह मां राजा भरतस्याभिषेचनम् ॥ १९, ६ ॥

अहं हि सीतां राज्यं च प्राणानिष्टान् धनानि च ।
हृष्टो भ्रात्रे स्वयं दद्यां भरताय प्रचोदितः ॥ १९, ७ ॥

न न्यूनं मयि कैकेयि किंचिदाशंससे गुणान् ।
यद् राजानमवोचस्त्वं ममेश्वरतरा सती ॥ १९, २४ ॥

"माता और सीता को कह कर आज ही बनगमन करूँगा" ऐसा रामने कहा—

यावन्मातरमापृच्छे सीतां चानुनयाम्यहम् ।
ततोऽद्यैव गमिष्यामि दण्डकानां महद्वनम् ॥ १९, २५ ॥

माता से मिलने के लिये राम का प्रस्थान—

वाचा मधुरया रामः सर्वं सम्मानयञ्जनम् ।
मातुः समीपं धर्मात्मा प्रविवेश महायशाः ॥ १९, ३८ ॥

तं गुणैः समतां प्राप्तो भ्राता विपुलविक्रमः ।
सौमित्रिरनुवव्राज धारयन् दुःखमात्मजम् ॥ १९, ३९ ॥

निर्विकार भाव से राम का माता के भवन मे प्रवेश—

प्रविश्य वेश्मातिभृशं मुदायुतं समीक्ष्य तां चार्थविपत्तिमागतम् ।
न चैव रामोऽत्र जगाम विक्रियां सुहृज्जनस्यात्मविपत्तिशंकया॥१९,४०॥

कौसल्या ने श्रीराम को देख कर उन्हें छाती में लगा लिया और माथा सूंघा तथा बैठने को कहा। रामने मां से कहा—

'अब इस आसन से क्या ? राजा ने मुझे १४ वर्षों का बनवास और भरत को यौवराज्य दिया है। मै तो जङ्गल जा रहा हूं—

सा चिरस्यात्मजं दृष्ट्वा मातृनन्दनमागतम् ।
अभिचक्राम संहृष्टा किशोरं वडवा यथा ॥ २०, २० ॥

स मातरमुपक्रान्तामुपसंगृह्य राघवः ।
परिष्वक्तश्च बाहुभ्यामवघ्रातश्च मूर्धनि ॥ २०, २१ ॥

देवि नूनं न जानीषे महद् भयमुपस्थितम् ।
इदं तव च दुःखाय वैदेह्या लक्ष्मणस्य च ॥ २०, २७ ॥

गमिष्ये दण्डकारण्यं किमनेनासनेन मे ।
विष्टरासनयोग्यो हि कालोऽयं मामुपस्थितः ॥ २०, २८ ॥

चतुर्दश हि वर्षाणि वत्स्यामि विजने वने ।
कन्दमूलफलैर्जीवन् हित्वा मुनिवदामिषम् ॥ २०, २९ ॥

भरताय महाराजो यौवराज्यं प्रयच्छति ।
मां पुनर्दण्डकारण्यं विवासयति तापसम् ॥ २०, ३० ॥

यह दुःसमाचार सुनकर कौसल्या मूर्छित हो गई और होश आने पर विलाप करने लगी—

सा निकृत्तेव सालस्य यष्टिः परशुना वने ।
पपात सहसा देवी देवतेव दिवश्च्युता ॥ २०, ३२ ॥

सा राघवमुपासीनमसुखार्ता सुखोचिता ।
उवाच पुरुषव्याघ्रमुपशृण्वति लक्ष्मणे ॥ २०, ३५ ॥
'यदि पुत्र न जायेथा मम शोकाय राघव ।
न स्म दुःखमतो भूयः पश्येयमहमप्रजाः ॥ २०, ३६ ॥

एक एव हि वन्ध्यायाः शोको भवति मानसः ।
अप्रजास्मीति संतापो न ह्यन्यः पुत्र विद्यते ॥ २०, ३७ ॥

न दृष्टपूर्वं कल्याणं सुखं वा पतिपौरुषे ।
अपि पुत्रे विपश्येयमिति रामस्थितं मया ॥ २०, ३८ ॥

सा बहून्यमनोज्ञानि वाक्यानि हृदयच्छिदाम् ।
अहं श्रोष्ये सपत्नीनामवराणां परा सती ॥ २०, ३९ ॥

अतो दुःखतरं किं नु प्रमदानां भविष्यति ।
मम शोको विलापश्च यादृशोऽयमनन्तकः ॥ २०, ४० ॥

त्वयि सन्निहितेऽप्येवमहमासं निराकृता ।
किं पुनः प्रोषिते तात ध्रुवं मरणमेव हि ॥ २०, ४१ ॥

अत्यन्तं निगृहीतास्मि भर्तुर्नित्यमसम्मता ।
परिवारेण कैकेय्याः समावाप्यथवावरा ॥ २०, ४२, ॥

यो हि मां सेवते कश्चिदपि वाप्यनुवर्तते ।
कैकेय्याः पुत्रमन्वीक्ष्य स जनो नाभिभाषते ॥ २०, ४३ ॥

नित्यक्रोधतया तस्याः कथं नु खरवादि तत् ।
कैकेय्या वदनं द्रष्टुं पुत्र शक्ष्यामि दुर्गता ॥ २०, ४३ ॥

कौसल्या को अपने सुकर्मों को कोसना और साथ वन ले जाने की आकांक्षा प्रकट करना—

उपवासैश्च योगैश्च बहुभिश्च परिश्रमैः ।
दुःखसंवर्धितो मोघं त्वं हि दुर्गतया मया ॥ २०, ३९ ॥

स्थिरं नु हृदयं मन्ये ममेदं यन्न दीर्यते ।
प्रावृषीव महानद्याः स्पृष्टं कूलं नवाम्भसा ॥ २०, ४९ ॥

ममैव नूनं मरणं न विद्यते नचावकाशोऽस्ति यमक्षये मम ।
यदन्तकोऽद्यैव न मां जिहीर्षति प्रसह्य सिंहो रुदतीं मृगीमिव ॥२०,५०॥

अथापि किं जीवितमद्य मे वृथा त्वया विना चन्द्रनिभाननप्रभ ।
अनुव्रजिष्यामि वनं त्वयैव गौः सुदुर्बला वत्समिवाभिकाङ्क्षया ॥२०,५४॥

कौसल्या के विलाप से द्रवित हो लक्ष्मण का समयोपयोगी बातें कहना, अन्यथा कामी राजा दशरथ को वध कर डालना अथवा बन्दी कर लेने का परामर्श—

तथा तु विलपन्तीं तां कौशल्यां राममातरम् ।
उवाच लक्ष्मणो दीनस्तत्कालसदृशं वचः ॥ २, १ ॥

"न रोचते ममाप्येतदार्ये यत् राघवो वनम् ।
त्यक्त्वा राज्यश्रियं गच्छेत् स्त्रिया वाक्यवशंगतः ॥ २१, २ ॥

विपरीतश्च वृद्धश्च विषयैश्च प्रधर्षितः ।
नृपः किमिव न ब्रूयाच्चोद्यमानः समन्मथः ॥ २१, ३ ॥

प्रोत्साहितोऽयं कैकेय्या संतुष्टो यदि नः पिता ।
अमित्रभूतो निःसङ्गः वध्यतां बध्यतामपि ॥ २१, १२ ॥
गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः ।
उत्पथं प्रतिपन्नस्य कार्यं भवति शासनम् ॥ २१, १३ ॥

त्वया चैव मया चैव कृत्वा वैरमनुत्तमम् ।
कास्य शक्तिः श्रियं दातुं भरतायारिशासन ॥ २१, १५ ॥

अनुरक्तोऽस्मि भावेन भ्रातरं देवि तत्त्वतः ।
सत्येन धनुषा चैव दत्तेनेष्टेन ते शपे ॥ २१, १६ ॥

दशरथ एवं कैकेयी के प्रति लक्ष्मण का भीषण आरोप व्यक्त करना—

दीप्तमग्निमरण्यं वा यदि रामः प्रवेक्ष्यति ।
प्रविष्टं तत्र मां देवि त्वं पूर्वमवधारय ॥ २१, १७ ॥

हनिष्ये पितरं वृद्धं कैकेय्यासक्तमानसम ।
कृपणं च स्थितं बाल्ये वृद्धभावेन गर्हितम् ॥ २१, १९ ॥

कौसल्या ने लक्ष्मण की बातें सुनकर राम से तदनुसार काम करने को कहा और यह भी कहा कि यदि तुम मुझे छोड़कर बन जाओगे तो मैं अनशन द्वारा प्राण त्याग करूँगी और इसका पाप तुम्हें लगेगा —

भ्रातुस्ते वदतः पुत्र लक्ष्मणस्य श्रुतं त्वया।
यत्रानन्तरं तत्त्व कुरुष्व यदि रोचते ॥ २१, २१ ॥
नचाधर्म्यं वचः श्रुत्वा सपत्न्या मम भाषितम्।
विहाय शोकसंतप्तां गन्तुमर्हसि मामितः ॥ २१, २२ ॥
धर्मज्ञ इति धर्मिष्ठ धर्मं चरितुमिच्छसि।
शुश्रूष मामिहस्थस्त्वं चर धर्ममनुत्तमम् ॥ २१ २३ ॥
यथैव राजा पूज्यस्ते गौरवेण तथा ह्यहम्।
त्वं साहं नानुजानामि न गन्तव्यमितो वनम् ॥ २१, २५ ॥
यदि त्वं यास्यसि वनं त्यक्त्वा मां शोकलालसाम्।
अहं प्रायमिहाशिष्ये न च शक्ष्यामि जीवितुम् ॥ २१, २७ ॥
ततस्त्वं प्राप्स्यसे पुत्र निरयं लोकविश्रुतम्।
ब्रह्महत्यामिवाधर्मात् समुद्रः सरितां पतिम् ॥ २१, २८ ॥

श्रीराम ने पिता की आज्ञापालन में दृढ़ता दिखाई। पिता की आज्ञा को सर्वोपरि बताया—

विलपन्तीं तथा दीनां कौशल्यां जननीं ततः।
उवाच रामो धर्मात्मा वचनं धर्मसंहितम् ॥ २१, २९ ॥
'नास्ति शक्तिः पितुर्वाक्यं समतिक्रमितुं मम।
प्रसादये त्वां शिरसा गन्तुमिच्छाम्यहं वनम् ॥ २१, ३० ॥
ऋषिणा च पितुर्वाक्यं कुर्वता वनचारिणा।
गौर्हता जानताधर्मं कण्डुना च विपश्चिता ॥ २१, ३१ ॥
अस्माकं तु कुले पूर्वं सगरस्याज्ञया पितुः।
खनद्भिः सागरैर्भूमिमवाप्तः सुमहान् बधः ॥ २१ ३२ ॥
जामदग्न्येन रामेण रेणुका जननी स्वयम्।
कृत्ता परशुनारण्ये पितुर्वचनकारणात् ॥ २१, ३३ ॥
न खल्वेतन्मयैकेन क्रियते पितृशासनम्।
एतैरपि कृतं देवि ये मया परिकीर्तिताः ॥ २१, ३५ ॥
नाहं धर्ममपूर्वं ते प्रतिकूलं प्रवर्त्तये।
पूर्वैरयमभिप्रेतो गतो मार्गोऽनुगम्यते ॥ २१, ३६ ॥
तदेतत् तु मया कार्यं क्रियते भुवि नान्यथा।
पितुर्हि वचनं कुर्वन् न कश्चिन्नाम हीयते ॥ २१, ३७ ॥

श्रीराम ने लक्ष्मण को सम्बोधित कर कहा कि, तुझे मेरे लिये प्रगाढ़ स्नेह और भक्ति है, किन्तु सत्यपालनार्थ मैं अपने संकल्प पर दृढ़ हूँ, तुम्हें भी मेरा ही अनुसरण करना चाहिये—

तामेवमुक्त्वा जननीं लक्ष्मणं पुनरब्रवीत्।
वाक्यं वाक्यविदां श्रेष्ठः श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम् ॥ २१, ३८ ॥

"तव लक्ष्मण जानामि मयि स्नेहमनुत्तमम्।
विक्रमं चैव सत्त्वं च तेजश्च सुदुरासदम् ॥ २१, ३९ ॥

मम मातुर्महद्दुःखमतुलं शुभलक्षण।
अभिप्रायं न विज्ञाय सत्यस्य च शमस्य च ॥ २१, ४० ॥

धर्मो हि परमो लोके धर्मे सत्यं प्रतिष्ठितम्।
धर्मसंश्रितमप्येतत् पितुर्वचनमुत्तमम् ॥ २१, ४१ ॥

संश्रुत्य च पितुर्वाक्यं मातुर्वा ब्राह्मणस्य वा।
न कर्तव्यं वृथा वीर धर्ममाश्रित्य तिष्ठता ॥ २१, ४२ ॥

तदेतां विसृजानार्यां क्षत्रधर्माश्रितां मतिम्।
धर्ममाश्रय मा तैक्ष्ण्यं मद्बुद्धिरनुगम्यताम् ॥ २१, ४४ ॥

फिर माता कौसल्या से राम ने अनुमति माँगी—

अनुमन्यस्व मां देवि गमिष्यन्तमितो वनम्।
शापितासि मम प्राणैः कुरुस्वस्त्ययनानि मे ॥ २१, ४६ ॥

त्वया मया च वैदेह्या लक्ष्मणेन सुमित्रया।
पितुर्नियोगे स्थातव्यमेष धर्मः सनातनः ॥ २१, ४९ ॥

अम्ब सम्भृत्य सम्भारान् दुःखं हृदि निगृह्य च।
वनवासकृता बुद्धिर्मम धर्म्यानुवर्त्यताम् ॥ २१, ५० ॥

माता ने कहा, 'माता की हैसियत से कहती हूँ कि तुम वन मत जाओ—

यथैव ते पुत्र पिता तथाहं गुरुः स्वधर्मेण सुहृत्तया च।
न त्वानुजानामि न मां विहाय सुदुःखितामर्हसि पुत्र गन्तुम् ॥२१,५२॥

फिर श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा—

अहं हि ते लक्ष्मण नित्यमेव जानामि भक्तिं च पराक्रमं च।
मम त्वभिप्रायमसंनिरीक्ष्य मात्रा सहाभ्यर्दसि मा सुदुःखम् ॥२१,५६॥

पुनः श्रीराम का माता को तर्कपूर्वक समझाना—

धर्मार्थकामाः खलु जीवलोके समीक्षिता धर्मफलोदयेषु ।
ये तत्र सर्वे स्युरसंशयं मे भार्येव वश्याभिमता स पुत्रा ॥ २१,५७ ॥

यस्मिंस्तु सर्वे स्युरसंनिविष्टा धर्मो यतः स्यात् तदुपक्रमेत ।
द्वेष्यो भवत्यर्थपरो हि लोके कामात्मता खल्वपि न प्रशस्ता॥२१,५८॥

न तेन शक्नोमि पितुः प्रतिज्ञामिमां न कर्तुं सकलां यथावत् ।
स ह्यावयोस्तात गुरुर्नियोगे देव्याश्च भर्ता स गतिश्च धर्मः॥२१,६०॥

तस्मिन् पुनर्जीवति धर्मराजे विशेषतः स्वे पथि वर्तमाने ।
देवी मया सार्धमितोऽभिगच्छेत् कथंस्विदन्या विधवेव नारी॥ १,६२॥

यशो ह्यहं केवलराज्यकारणान्न पृष्ठतः कर्तुमलं महोदयम् ।
अदीर्घकालेन तु देवि जीविते वृणेऽवरामद्य महीमधर्मतः ॥२१,६३॥

प्रसादयन्नरवरवृषभः स मातरं पराक्रमाज्जिगमिषुरेव दण्डकान् ।
अथानुजं भृशमनुशास्य दर्शनं चकार तां हृदि जननीं प्रदक्षिणाम्॥६४॥

कैकेयी के विषय में तथा दैव की प्रबलता के विषय में लक्ष्मण से संलाप—

जानासि हि यथा सौम्य न मातृषु ममान्तरम् ।
भूतपूर्वं विशेषो वा तस्या मयि सुतेऽपि वा ॥ २२, १७ ॥
सोऽभिषेकनिवृत्त्यर्थैः प्रवासार्थैश्च दुर्वचैः ।
उग्रैर्वाक्यैरहं तस्या नान्यद् दैवात् समर्थये ॥ २२, १८ ॥
सुखदुःखे भयक्रोधौ लाभालाभौ भवाभवौ ।
यस्य किंचित् तथाभूतं ननु दैवस्य कर्म तत् ॥
ऋषयोऽप्युग्रतपसो दैवेनाभिप्रचोदिताः ।
उत्सृज्य नियमांस्तीव्रान् भ्रश्यन्ते काममन्युभिः ॥ २२, २३ ॥
असंकल्पितमेवेह यदकस्मात् प्रवर्तते ।
निवर्त्यारब्धमारम्भैर्ननु दैवस्य कर्म तत् ॥ २२, २४ ॥
एतया तत्त्वया बुद्ध्या संस्तभ्यात्मानमात्मना ।
व्याहतेऽप्यभिषेके मे परितापो न विद्यते ॥ २२, २५ ॥

न लक्ष्मणास्मिन् मम राज्यविघ्ने माता यवीयस्यभिशङ्कितव्या ।
दैवाभिपन्ना न पिता कथंचिज्जानासि दैवं हि तथा प्रभावम् ॥२२,३०॥

लक्ष्मण की दैव के विरुद्ध प्रचण्ड घोषणा, और भाग्य की शक्ति को ललकारना—

इति ब्रुवति रामे तु लक्ष्मणोऽवाक्शिरा इव ।

ध्यात्वा मध्यं जगामाशु सहसा दैन्यहर्षयोः ॥ २३, १ ॥

यद्यपि प्रतिपत्तिस्ते दैवी चापि तयोर्मतम् ।
तथाप्युपेक्षणीयं ते न मे तदपि रोचते ॥ २२, १५ ॥

विक्लवो वीर्यहीनो यः स दैवमनुवर्तते ।
धीराः सम्भावितात्मानो न दैवं पर्युपासते ॥ २३, १६, ॥

दैवं पुरुषकारेण यः समर्थः प्रबाधितुम् ।
न दैवेन विपन्नार्थः पुरुषः सोऽवसीदति ॥ २३, १७ ॥

द्रक्ष्यन्ति त्वद्य दैवस्य पौरुषं पुरुषस्य च ।
दैवमानुषयोरद्य व्यक्ताव्यक्तिर्भविष्यति ॥ २३, १८ ॥

यैर्विवासस्तवारण्ये मिथो राजन् समर्थितः ।
अरण्ये ते विवत्स्यन्ति चतुर्दश समास्तथा ॥ २३, २२ ॥

अहं तदाशां धक्ष्यामि पितुस्तस्याश्च या तव ।
अभिषेकविघातेन पुत्रराज्याय वर्तते ॥ २३, २३ ॥

मद्बलेन विरुद्धाय न स्याद् दैवबलं तथा ।
प्रभविष्यति दुःखाय यथोग्रं पौरुषं मम ॥ २३ २४ ॥

ऊर्ध्वं वर्षसहस्रान्ते प्रजापाल्यमनन्तरम् ।
आर्यपुत्राः करिष्यन्ति वनवासं गते त्वयि ॥ २३, २५ ॥

राम के प्रति लक्ष्मण का प्रतिवेदन—

मङ्गलैरभिषिञ्चस्व तत्र त्वं व्यापृतो भव ।
अहमेको महीपालानलं वारयितुं बलात् ॥ २३, २९ ॥

न शोभार्थाविमौ बाहू न धनुर्भूषणाय मे ।
नासिरा बन्धनार्थाय न शराः स्तम्भहेतवः ॥ २३, ३० ॥

अद्य मेऽस्त्रप्रभावस्य प्रभावः प्रभविष्यति ।
राज्ञश्चाप्रभुतां कर्तुं प्रभुत्वं च तव प्रभो ॥ २३, ३७ ॥

ब्रवीहि कोऽद्यैव मया वियुज्यतां तवासुहृत् प्राणयशः सुहृज्जनैः ।
यथा तवेयं वसुधा वशा भवेत् तथैव मां शाधि तवास्मि किंकरः ॥२३,४०॥

राम ने प्यार से लक्ष्मण को शान्त किया—

विसृज्य बाष्पं परिसान्त्व्य चासकृत् स लक्ष्मणं राघववंशवर्धनः ।
उवाच पित्रोर्वचने व्यवस्थितं निबोध मामेष हि सौम्य सत्पथः ॥२३,४१॥

राम से माता कौसल्या का पुनः आग्रह —

कथं हि धेनुः स्वं वत्सं गच्छन्तमनुगच्छति ।
अहं त्वामनुगमिष्यामि यत्र वत्स गमिष्यसि ॥ २४, ९ ॥

श्रीराम ने माँ को नीतिपूर्वक सैद्धान्तिक नारीधर्म का निष्कर्ष समझाया—

कैकेय्या वञ्चितो राजा मयि चारण्यमाश्रिते ।
भवत्या च परित्यक्तो न नूनं वर्तयिष्यति ॥ २४, ११ ॥
भर्तुः किल परित्यागो नृशंसः केवलं स्त्रियाः ।
स भवत्या न कर्तव्यो मनसापि विगर्हितः ॥ २४, १२ ॥
मया चैव भवत्या च कर्तव्यं वचनं पितुः ।
राजा भर्ता गुरुः श्रेष्ठः सर्वेषामीश्वरः प्रभुः ॥ २४, १६ ॥
तां तथा रुदतीं रामो रुदन् वचनमब्रवीत् ।
जीवन्त्या हि स्त्रिया भर्ता दैवतं प्रभुरेव च ॥ २४, ०॥
भवत्या मम चैवाद्य राजा प्रभवति प्रभुः ॥ २४, २१ ॥
दारुणश्चाप्ययं शोको यथैनं न विनाशयेत् ।
राज्ञो वृद्धस्य सततं हितं चर समाहिता ॥ २४, २४ ॥
व्रतोपवासनिरता या नारी परमोत्तमा ।
भर्तारं नानुवर्तेत सा च पापगतिर्भवेत् ॥ २४, २५ ॥
भर्तुः शुश्रूषया नारी लभते स्वर्गमुत्तमम् ।
अपि या निर्नमस्कारा निवृत्ता देवपूजनात् ॥ २४, २६ ॥
शुश्रूषामेव कुर्वीत भर्तुः प्रियहिते रता ।
एष धर्मः स्त्रिया नित्यो वेदे लोके श्रुतः स्मृतः ॥ २४, २७ ॥

श्रीराम के दृढ़ निश्चय को जानकर माता ने उसे वनगमन की अनुमति दे दी—

एवमुक्ता तु रामेण बाष्पपर्याकुलेक्षणा ।
कौसल्या पुत्रशोकार्ता रामं वचनमब्रवीत् ॥ २४, ३१ ॥
गमने सुकृतां बुद्धिं न ते शक्नोमि पुत्रक ।
विनिवर्तयितुं वीर नूनं कालो दुरत्ययः ॥ २४, ३२ ॥
गच्छ पुत्र त्वमेकाग्रो भद्रं तेऽस्तु सदा विभो ।
पुनस्त्वयि निवृत्ते तु भविष्यामि गतक्लमा ॥ २४, ३३ ॥

माँ ने श्रीराम का स्वस्त्ययनकार्य सम्पन्न किया —

तथा हि रामं वनवासनिश्चितं ददर्श देवी परमेण चेतसा।
उवाच रामं शुभलक्षणं वचो बभूव च स्वस्त्ययनाभिकाङ्क्षिणी ॥२४,३८॥

स्वस्त्ययनानन्तर श्रीराम आगे अपने भवन की ओर बढ़े—

अभिवाद्य तु कौसल्यां रामः सम्प्रस्थितो वनम्।
कृतस्वस्त्ययनो मात्रा धर्मिष्ठे वर्त्मनि स्थितः ॥ २६, १ ॥
प्रविवेशाथ रामस्तु स्ववेश्म सुविभूषितम्।
प्रहृष्टजनसम्पूर्णं ह्रिया किंचिदवाङ्मुखः ॥ २६, ५ ॥

सीता ने अपने प्रियतम को खिन्न वदन देखा —

अथ सीता समुत्पत्य वेपमाना च तं पतिम्।
अपश्यच्छोकसंतप्तं चिन्ताव्याकुलितेन्द्रियम् ॥ २६, ६ ॥

सीता को खिन्न देख कर श्रीराम बोलने लगे—

तां दृष्ट्वा स हि धर्मात्मा न शशाक मनोगतम्।
तं शोकं राघवः सोढुं ततो विवृततां गतः ॥ २६, ७ ॥

सीता ने श्रीराम से शोक का कारण पूछा—

विवर्णवदनं दृष्ट्वा तं प्रस्विन्नममर्षणम्।
आह दुःखाभिसंतप्ता किमिदानीमिदं प्रभो ॥ २६, ८ ॥

सीता की राम के प्रति प्रश्न—

अद्य बार्हस्पतः श्रीमान् युक्तः पुष्येण राघव।
प्रोच्यते ब्राह्मणैः प्राज्ञैः केन त्वमसि दुर्मनाः ॥ २६, ९ ॥
अभिषेको यदा सज्जः किमिदानीमिदं तव।
अपूर्वो मुखवर्णश्च न प्रहर्षश्च लक्ष्यते ॥ २६, १८ ॥

राम के द्वारा सारी घटनाओं का वर्णन—

इतीव विलपन्तीं तां प्रोवाच रघुनन्दनः।
सीते तत्र भवांस्तातः प्रव्राजयति मां वनम् ॥ २६, १९ ॥
राज्ञा सत्यप्रतिज्ञेन पित्रा दशरथेन वै।
कैकेय्यै मम मात्रे तु पुरा दत्तौ महावरौ ॥ २६, २१ ॥
तयाद्य मम सज्जेऽस्मिन्नभिषेके नृपोद्यते।
प्रचोदितः स समयो धर्मेण प्रतिनिर्जितः ॥ २६, २२ ॥

चतुर्दश हि वर्षाणि वस्तव्यं दण्डके मया ।
पित्रा मे भरतश्चापि यौवराज्ये नियोजितः ॥ २६, २३ ॥

सोऽहं त्वामागतो द्रष्टुं प्रस्थितो विजनं वनम् ।
भरतस्य समीपे ते नाहं कथ्यः कदाचन ॥ २६, २४ ॥

सीताजी को भरत के समक्ष अपने विषय में मौन रहने का आदेश एवं अन्यान्य उपदेश (श्रीराम का)—

ऋद्धियुक्ता हि पुरुषा न सहन्ते परस्तवम् ।
तस्मान्न ते गुणाः कथ्या भरतस्याग्रतो मम ॥ २६,२५ ॥
अहं चापि प्रतिज्ञां तां गुरोः समनुपालयन् ।
वनमद्यैव यास्यामि स्थिरीभव मनस्विनी ॥ २६, २८ ॥
माता च मम कौसल्या वृद्धा संतापकर्षिता ।
धर्ममेवाग्रतः कृत्वा त्वत्तः सम्मानमर्हति ॥ २६, ३१ ॥
वन्दितव्याश्च ते नित्यं याः शेषा मम मातरः ।
स्नेहप्रणयसम्भोगैः समा हि मम मातरः ॥ २६, ३३ ॥
विप्रियं च न कर्तव्यं भरतस्य कदाचन ।

स हि राजा च वैदेहि देशस्य च कुलस्य च ॥ २६, ३४ ॥

अहं गमिष्यामि महावनं प्रिये त्वया हि वस्तव्यमिहैव भामिनि ।
यथा व्यलीकं कुरुषे न कस्यचित् तथा त्वया कार्यमिदं वचो मम॥२६,३८॥

सीता ने स्नेह स सनी बातें क्रोधकी मुद्रा में श्रीराम से कही, और अपने वनगमन के समर्थन में अकाट्य तर्क दिये—

एवमुक्ता तु वैदेही प्रियार्हा प्रियवादिनी ।
प्रणयादेव संक्रुद्धा भर्तारमिदमब्रवीत् ॥ २७, १ ॥
'किमिदं' भाषसे राम वाक्यं लघुतया ध्रुवम् ।

त्वया यदपहास्यं मे श्रुत्वा नरवरोत्तम ॥ २७, २ ॥
वीराणां राजपुत्राणां शस्त्रास्त्रविदुषां नृप ।
अनर्हमयशस्यं च न श्रोतव्यं त्वयेरितम् ॥ २७, ३ ॥
आर्यपुत्र पिता माता भ्राता पुत्रस्तथा स्नुषा ।
स्वानि पुण्यानि भुञ्जानाः स्वं स्वं भाग्यमुपासते ॥ २७, ४ ॥
भर्तुर्भाग्यं तु नार्येका प्राप्नोति पुरुषर्षभ ।
अतश्चैवाहमादिष्टा वने वस्तव्यमित्यपि ॥ २७, ५ ॥

न पिता नात्मजो वात्मा न माता न सखीजन ।
इह प्रेत्य च नारीणां पतिरेको गतिः सदा ॥ २७, ६ ॥

प्रासादाग्रे विमानैर्वा वैहायसगतेन वा ।
सर्वावस्थागता भर्तुः पादच्छाया विशिष्यते ॥ २७, ९ ॥

अनुशिष्टास्मि मात्रा च पित्रा च विविधाश्रयम् ।
नास्मि सम्प्रति वक्तव्या वर्तितव्यं यथा मया ॥ २७, १० ॥

अहं वनं गमिष्यामि वनं पुरुषवर्जितम् ।
नानामृगगणाकीर्णं शार्दूलगणसेवितम् ॥ २७, ११ ॥

एवं वर्षसहस्राणि शतं वापि त्वया सह ।
व्यतिक्रमं न वेत्स्यामि स्वर्गोऽपि हि न मे मतः ॥ २७, २० ॥

स्वर्गेऽपि च विना वासो भविता यदि राघव ।
त्वया विना नरव्याघ्र नाहं तदपि रोचये ॥ २७, २१ ॥

अनन्यभावामनुरक्तचेतसं त्वया वियुक्तां मरणाय निश्चितम् ।
नयस्व मां साधु कुरुष्व याचनां नातो मया ते गुरुता भविष्यति॥२७,२३॥

सीता के अनेक अनुनय विनय पर भी श्रीराम उसे वन ले जाने पर राजी नहीं हुये और वन की भीषणता को भयावह शब्दों में वर्णन किया एवं वहाँ चलने से रोका—

तथा ब्रुवाणामपि धर्मवत्सलां न च स्म सीतां नृवरो निनीषति ।
उवाच चैनां बहुसंनिवर्तने वने निवासस्य च दुःखितां प्रति ॥२७, २४॥

सीते यथा त्वां वक्ष्यामि तथा कार्यं त्वयाबले ।
वने दोषा हि बहवो वसतस्तान् निबोध मे ॥ २८, ४ ॥

हितबुद्ध्या खलु वचो मयैतदभिधीयते ।
सदा सुखं न जनामि दुःखमेव सदा वनम् ॥ २८, ६ ॥

गिरिनिर्झरसम्भूता गिरिनिर्दरिवासिनाम् ।
सिंहानां निनदा दुःखाः श्रोतुं दुःखमतो वनम् ॥ २८, ७ ॥

सग्राहाः सरितश्चैव पङ्कवत्यस्तु दुस्तराः ।
मत्तैरपि गजैर्नित्यमतो दुःखतरं वनम् ॥ २८, ९ ॥

लताकण्टकसंकीर्णाः कृकवाकूपनादिताः ।
निरपाश्च सुदुःखाश्च मार्गा दुःखमतो वनम् ॥ २८, १० ॥

अहोरात्रं च संतोषः कर्तव्यो नियतात्मना ।
फलैर्वृक्षावपतितैः सीते दुःखमतो वनम् ॥ २८, १२ ॥
उपवासश्च कर्तव्यो यथाप्राणेन मैथिलि ।
जटाभारश्च कर्तव्यो वल्कलाम्बरधारणम् ॥ २८, १३ ॥
अतीव वातस्तिमिरं बुभुक्षा चाति नित्यशः ।
भयानि च महान्त्यत्र ततो दुःखतरं वनम् ॥ २८, १८ ॥
नदीनीलयनाः सर्पा नदीकुटिलगामिनः ।
तिष्ठन्त्यावृत्य पन्थानमतो दुःखतरं वनम् ॥ २८, २० ॥
तदलं ते वनं गत्वा क्षेमं नहि वनं तव ।
विमृशन्निव पश्यामि बहुदोषकरं वनम् ॥ २८, २५ ॥

जब श्रीराम वन ले जाने का बिल्कुल तैयार नहीं हुए, तब सीता ने कहा कि—पति के साथ वनकण्टकादि दुःख भी सुखद ही होंगे, यदि आप साथ न ले जायंगे तो मुझे जीवित न पायंगे—

वनं तु नेतुं न कृता मतिर्यदा बभूव रामेण तदा महात्मना ।
न तस्य सीता वचनं चकार तं ततोऽब्रवीद् राममिदं सुदुःखिता ॥२८,२६॥

ये त्वया कीर्तिता दोषा वने वस्तव्यतां प्रति ।
गुणानित्येव तान् विद्धि तव स्नेहपुरस्कृता ॥ २९, २ ॥
मृगाः सिंहाः गजाश्चैव शार्दूलाः शरभास्तथा ।
चमराः सृमराश्चैव ये चान्ये वनचारिणः ॥ २९, ३ ॥
अदृष्टवा पूर्वरूपत्वात् सर्वे ते तव राघव ।
रूपं दृष्टवापसर्पेयुस्तव सर्वे हि बिभ्यति ॥ २९, ४ ॥
त्वया च सह गन्तव्यं मया गुरुजनाज्ञया ।
त्वद्वियोगेन मे राम त्यक्तव्यमिह जीवनम् ॥ २९, ५ ॥
नहि मां त्वत्समीपस्थामपि शक्रोऽपि राघव ।
सुराणामीश्वरः शक्तः प्रधर्षयितुमोजसा ॥ २९, ६ ॥
पतिहीना तु या नारी न सा शक्ष्यति जीवितुम् ।
काममेवंविधं राम त्वया मम निदर्शितम् ॥ २९, ७ ॥
प्रसादितश्च वै पूर्वं त्वं मे बहुतिथं प्रभो ।
गमनं वनवासस्य काङ्क्षितं हि सह त्वया ॥ २९, १४ ॥

कृतक्षणाहं भद्रं ते गमनं प्रति राघव ।
वनवासस्य शूरस्य मम चर्या हि रोचते ॥ २९, १५ ॥

शुद्धात्मन् प्रेमभावाद्धि भविष्यामि विकल्मषा ।
भर्तारमनुगच्छन्ती भर्ता हि परदैवतम् ॥ २९, १६ ॥

प्रेत्यभावे हि कल्याणः संगमो मे सदा त्वया ।
श्रुतिर्हि श्रूयते पुण्या ब्राह्मणानां यशस्विनाम् ॥ २९, १७ ॥

इह लोके च पितृभिर्या स्त्री यस्य महाबल ।
अद्भिर्दत्ता स्वधर्मेण प्रेत्यभावेऽपि तस्य सा ॥ २९, १८ ॥

भक्तां पतिव्रतां दीनां मां समां सुखदुःखयोः ।
नेतुमर्हसि काकुत्स्थ समानसुखदुःखिनीम् ॥ २९, २० ॥

यदि मां दुःखितामेवं वनं नेतुं न चेच्छसि ।
विषमग्निं जलं वाहमास्थास्ये मृत्युकारणात् ॥ २६, २१ ॥

एवमुक्ता तु सा चिन्तां मैथिली समुपागता ।
स्नापयन्तीव गामुष्णैरश्रुभिर्नयनच्युतैः ॥ २९, २३ ॥

श्रीराम ने सीताजी को रोकने की चेष्टा की किन्तु, चिन्ता करती हुई सीता उन पर कुपित सी हो गई—

चिन्तयन्तीं तदा तां तु निवर्तयितुमात्मवान् ।
क्रोधाविष्टां तु वैदेहीं काकुत्स्थो बह्वसान्त्वयत् ॥ २९, २४ ॥

श्रीराम द्वारा सीताजी को बन साथ न ले जाने पर उन्हें क्रोध सा आ गया और उन्होंने प्रेम एवं अभिमान के कारण राम पर व्यंग्य आक्षेप किया—

सान्त्व्यमाना तु रामेण मैथिली जनकात्मजा ।
वनवासनिमित्तार्थं भर्तारमिदमब्रवीत् ॥ ३०, १ ॥

सा तमुत्तमसंविग्ना सीता विपुलवक्षसम् ।
प्रणयाच्चाभिमानाच्च परिचिक्षेप राघवम् ॥ ३०, २ ॥

किं त्वा मन्यत वैदेहः पिता मे मिथिलाधिपः ।
राम जामातरं प्राप्य स्त्रियं पुरुषविग्रहम् ॥ ३०, ३ ॥

अनृतं बत लोकोऽयमज्ञानाद् यदि वक्ष्यति ।
तेजो नास्ति परं रामे तपतीव दिवाकरे ॥ ३०, ४ ॥

किं हि कृत्वा विषण्णस्त्वं कुतो वा भयमस्ति ते ।
यत् परित्यक्तुकामस्त्वं मामनन्यपरायणाम् ॥ ३०, ५ ॥

द्युमत्सेनसुतं वोरं सत्यवन्तमनुव्रताम्।
सावित्रीमिव मां विद्धि त्वमात्मवशवर्तिनम् ॥ ३०, ६ ॥

स्वयं तु भार्यां कौमारीं चिरमध्युषितां सतीम्।
शैलूष इव मां राम परेभ्यो दातुमिच्छसि ॥ ३०, ८ ॥

यस्य पथ्यं च रामात्थ यस्य चार्थेऽवरुध्यसे।
त्वं तस्य भव वश्यश्च विधेयश्च सदानघ ॥ ३०, ९ ॥

स मामनादाय वनं न त्वं प्रस्थितुमर्हसि।
तपो वा यदि वारण्यं स्वर्गो वा स्यात् त्वया सह ॥ ३०, १० ॥

शाद्वलेषु यदा शिश्ये वनान्तर्वनगोचरा।
कुथास्तरणयुक्तेषु किं स्यात् सुखतरं ततः ॥ १४ ॥

पत्रं मूलं फलं यत्तु अल्पं वा यदि वा बहु।
दास्यसे स्वयमाहृत्य तन्मेऽमृतरसोपमम् ॥ ३०, १५ ॥

इमं हि सहितुं शोकं मुहूर्तमपि नोत्सहे।
किं पुनर्दशवर्षाणि त्रीणि चैकं च दुःखिता ॥ ३०, २१ ॥

उपरोक्त बातें कहकर सीता राम से लिपट गईं और ढाड़मार कर जोरों से रोने लगीं—

इति सा शोकसंतप्ता विलप्य करुणं बहु।
चुक्रोश पतिमायस्ता भृशमालिङ्ग्य सस्वरम् ॥ ३०, २२ ॥

तां परिष्वज्य बाहुभ्यां विसंज्ञामिव दुःखिताम्।
उवाच वचनं रामः परिविश्वासयंस्तदा ॥ ३०, २६ ॥

"न देवि बत दुःखेन स्वर्गमप्यभिरोचये।
नहि मेऽस्ति भयं किंचित् स्वयम्भोरिव सर्वतः ॥ ३०, २७ ॥

तव सर्वमभिप्रायमविज्ञाय शुभानने।
वासं न रोचयेऽरण्ये शक्तिमानपि रक्षणे ॥ ३०, २८ ॥

अस्वाधीनं कथं दैवं प्रकारैरभिराध्यते।
स्वाधीनं समतिक्रम्य मातरं पितरं गुरुम् ॥ ३०, ३३ ॥

यत्र त्रयं त्रयो लोकाः पवित्रं तत्समं भुवि।
नान्यदस्ति शुभापाङ्गे तेनेदमभिराध्यते ॥ ३०, ३४ ॥

न सत्यं दानमानौ वा यज्ञो वाप्याप्तदक्षिणाः ।
तथा बलकराः सीते यथा सेवा पितुर्मता ॥ ३०, ३५ ॥
स्वर्गो धनं वा धान्यं वा विद्या पुत्राः सुखानि च ।
गुरुवृत्त्यनुरोधेन न किंचिदपि दुर्लभम् ॥ ३०, ३६ ॥
देवगन्धर्वगोलोकान् ब्रह्मलोकांस्तथापरान् ।
प्राप्नुवन्ति महात्मानो मातृपितृपरायणाः ॥ ३०, ३७ ॥
स मां पिता यथा शास्ति सत्यधर्मपथे स्थितः ।
तथा वर्तितुमिच्छामि स हि धर्मः सनातनः ॥ ३०, ३८ ॥
मम सन्ना मतिः सीते नेतुं त्वां दण्डकावनम् ।
वसिष्यामीति सा त्वं मामनुयातुं सुनिश्चिता ॥ ३०, ३९ ॥

श्रीराम ने प्रेमालिंगन कर साथ चलने की आज्ञा दे दी—

ब्राह्मणेभ्यश्च रत्नानि भिक्षुकेभ्यश्च भोजनम् ।
देहि चाशंसमानेभ्यः संत्वरस्व च मा चिरम् ॥ ३०, ४३ ॥
भूषणानि महार्हाणि वरवस्त्राणि यानि च ।
रमणीयाश्च ये केचित् क्रीडार्थाश्चाप्युपस्कराः ॥ ३०, ४४ ॥
शयनीयानि यानानि मम चान्यानि यानि च ।
देहि स्वभृत्यवर्गस्य ब्राह्मणानामनन्तरम् ॥ ३०, ४५ ॥

पति के अभिप्राय को जान सीता दान कार्य में जुट गई—

अनुकूलं तु सा भर्तुर्ज्ञात्वा गमनमात्मनः ।
क्षिप्रं प्रमुदिता देवी दातुमेव प्रचक्रमे ॥ ३०, ४६ ॥

ततः प्रहृष्टा प्रतिपूर्णमानसा यशस्विनी भर्तुरवेक्ष्य भाषितम् ।
धनानि रत्नानि च दातुमङ्गना प्रचक्रमे धर्मभृतां मनस्विनी ॥३०,४७॥

वनगमन का निश्चय जानकर लक्ष्मण ने आकर श्रीसीताराम से प्रार्थना की कि, वह उनके साथ चलने को उद्यत हैं——

एवं श्रुत्वा स संवादं लक्ष्मणः पूर्वमागतः ।
बाष्पपर्याकुलमुखः शोकं सोढुमशक्नुवन् ॥ ३१, १ ॥
स भ्रातुश्चरणौ गाढं निपीड्य रघुनन्दनः ।
सीतामुवाचातियशां राघवं च महाव्रतम् ॥ ३१, २ ॥

"यदि गन्तुं कृताबुद्धिर्वनं मृगगजायुतम् ।
अहं त्वानुगमिष्यामि वनमग्रे धनुर्धरः ॥ ३१, ३ ॥

लक्ष्मण की अनन्य भक्ति—

न देवलोकाक्रमणं नामरत्वमहं वृणे ।
ऐश्वर्यं चापि लोकानां कामये न त्वया विना" ॥ ३१, ५ ॥

श्रीराम ने निषेध किया और कारण बताया—लक्ष्मण ने पहिले ही पूछा कि मुझे तो आज्ञा मिली हुई है । फिर क्यों रोका जा रहा है ?"

एवं ब्रुवाणः सौमित्रिर्वनवासाय निश्चितः ।
रामेण बहुभिः सान्त्वैर्निषिद्धः पुनरब्रवीत् ॥ ३१, ६ ॥
"अनुज्ञातस्तु भवता पूर्वमेव यदस्म्यहम् ।
किमिदानीं पुनरपि क्रियते मे निवारणम् ॥ ३१, ७ ॥
यदर्थं प्रतिषेधो मे क्रियते गन्तुमिच्छतः ।
एतदिच्छामि विज्ञातुं संशयो हि ममानघ ॥ ३१, ८ ॥

श्रीराम का निषेध का कारण बताना—

मयाद्य सह सौमित्रे त्वयि गच्छति तद्वनम् ।
को भजिष्यति कौसल्यां सुमित्रां वा यशस्विनीम् ॥ ३१, ११ ॥
अभिवर्षति कामैर्यः पर्जन्यः पृथिवीमिव ।
स कामपाशपर्यस्तो महातेजा महीपतिः ॥ ३१, १२ ॥
सा हि राज्यमिदं प्राप्य नृपस्याश्वपतेः सुता ।
दुःखितानां सपत्नीनां न करिष्यति शोभनम् ॥ ३१, १३ ॥
न भरिष्यति कौसल्यां सुमित्रां च सुदुःखिताम् ।
भरतो राज्यमासाद्य कैकेय्यां पर्यवस्थितः ॥ ३१, १४ ॥
तामार्यां स्वयमेवेह राजानुग्रहणेन वा ।
सौमित्रे भर कौसल्यामुक्तमर्थममुं चर ॥ ३१, १५ ॥
एवं मयि च ते भक्तिर्भविष्यति सुदर्शिता ।
धर्मज्ञ गुरुपूजायां धर्मश्चाप्यतुलो महान् ॥ ३१, १६ ॥

माता के सुख के लिये ही लक्ष्मण को अयोध्या में रहने को कहा—

एवं कुरुष्व सौमित्रे मत्कृते रघुनन्दन ।
अस्माभिर्विप्रहीणाया मातुर्नो न भवेत् सुखम् ॥ ३१, १७ ॥

लक्ष्मण ने कहा, भैया ! कौसल्या के निर्वाह के लिये एक हजार ग्राम मिले हुए हैं। वह तो हम जैसे हजारों का पालन कर सकती हैं—

एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः श्लक्ष्णया गिरा।
प्रत्युवाच तदा रामं वाक्यज्ञो वाक्यकोविदम् ॥ ३१, १८ ॥
"तवैव तेजसा वीर भरतः पूजयिष्यति।
कौसल्यां च सुमित्रां च प्रयतो नास्ति संशयः ॥ ३१, १९ ॥
यदि दुःस्थो न रक्षेत भरतो राज्यमुत्तमम्।
प्राप्य दुर्मनसा वीर गर्वेण च विशेषतः ॥ ३१, २० ॥
तमहं दुर्मतिं क्रूरं वधिष्यामि न संशयः।
तत्पक्षानपि तान् सर्वांस्त्रैलोक्यमपि किं तु सा ॥ ३१, २१ ॥
कौसल्या विभृयादार्या सहस्रं मद्विधानपि।
यस्याः सहस्रं ग्रामाणां सम्प्राप्तमुपजीविनाम् ॥ ३१, २२ ॥
कुरुष्व मामनुचरं वैधर्म्यं नेह विद्यते।
कृतार्थोऽहं भविष्यामि तव चार्थः प्रकल्प्यते ॥ ३१, २४ ॥
आहरिष्यामि ते नित्यं मूलानि च फलानि च।
वन्यानि च तथान्यानि स्वाहार्हाणि तपस्विनाम् ॥ ३१, २६ ॥
भवांस्तु सह वैदेह्या गिरिसानुषु रंस्यसे।
अहं सर्वं करिष्यामि जाग्रतः स्वपतश्च ते ॥ ३१, २७ ॥

श्रीराम ने लक्ष्मण को साथ चलने की आज्ञा दे दी, पर इष्ट जनों से सम्मति ले लेने को कहा—

रामस्त्वनेन वाक्येन सुप्रीतः प्रत्युवाच तम्।
व्रजापृच्छस्व सौमित्रे सर्वमेव सुहृज्जनम् ॥ ३१, २८ ॥

श्रीराम ने दान की इच्छा प्रकट की और लक्ष्मण को सुयज्ञादि ब्राह्मणों को शीघ्र बुलाने को कहा—

अहं प्रदातुमिच्छामि यदिदं मामकं धनम्।
ब्राह्मणेभ्यस्तपस्विभ्यस्त्वया सह परंतप ॥ ३१, ३५ ॥
वसिष्ठपुत्रं तु सुयज्ञमार्यं त्वमानयाशु प्रवरं द्विजानाम्।
अपि प्रयास्यामि वनं समस्तानभ्यर्च्य शिष्टानपरान् द्विजातीन् ॥ ३१, ३७ ॥

लक्ष्मण ने अपने अग्रज की आज्ञा यथावत् पालन कर सुयज्ञ को रामके सम्मुख उपस्थित किया—

ततः शासनमाज्ञाय भ्रातुः प्रियकरं हितम् ।
गत्वा स प्रविवेशाशु सुयज्ञस्य निवेशनम् ॥ ३२, १ ॥

तं विप्रमग्न्यगारस्थं वन्दित्वा लक्ष्मणोऽब्रवीत् ।
सखेऽभ्यागच्छ पश्य त्वं वेश्मदुष्करकारिणः ॥ ३२, २ ॥

ततः संध्यामुपास्थाय गत्वा सौमित्रिणा सह ।
ऋद्धं स प्राविशल्लक्ष्म्या रम्यं रामनिवेशनम् ॥ ३२, ३ ॥

जातरूपमयैर्मुख्यैरङ्गदैः कुण्डलैः शुभैः ।
सहेमसूत्रैर्मणिभिः केयूरैर्वलयैरपि ॥ ३२, ५ ॥

श्रीराम ने सुयज्ञादि ब्राह्मणों को यथेष्ट दान देकर उन सबों से कहा—

सुयज्ञं स तदोवाच रामः सीताप्रचोदितः ।
हारं च हेमसूत्रं च भार्यायै सौम्य हारय ॥ ३२, ६ ॥

रशनां चाथ सा सीता दातुमिच्छति ते सखी । ३२, ७ ॥

नागः शत्रुञ्जयो नाम मातुलोऽयं ददौ मम ।
तं ते निष्कसहस्रेण ददामि द्विजपुङ्गव ॥ ३२, १० ॥

इत्युक्तः स तु रामेण सुयज्ञः प्रतिगृह्य तत् ।
रामलक्ष्मणसीतानां प्रयुयोजाशिषः शिवाः ॥ ३२ ११ ॥

श्रीराम ने स्वयं पूजा करने के बाद अगस्त्यादि ऋषियों को पूजा करने के लिए लक्ष्मण से कहा—

अगस्त्यं कौशिकं चैव तावुभौ ब्राह्मणोत्तमौ ।
अर्चयाहूय सौमित्रे रत्नैः सस्यमिवाम्बुभिः ॥ ३२, १३ ॥
तर्पयस्व महाबाहो गोसहस्रेण राघव ।
सुवर्णरजतैश्चैव मणिभिश्च महाधनैः ॥ ३२, १४ ॥

आश्रितों को दान—

सूतश्चित्ररथश्चार्यः सचिवः सुचिरोषितः ।
तोषयैनं महार्हैश्च रत्नैर्वस्त्रैर्धनैस्तथा ॥ ३२, १७ ॥

अम्बा यथा नो नन्देच्च कौसल्या मम दक्षिणाम् ।
तथा द्विजातींस्तान् सर्वांल्लक्ष्मणार्चय सर्वशः ॥ ३२, २२ ॥

ततः स पुरुषव्याघ्रस्तद् धनं सह लक्ष्मणः।
द्विजेभ्यो बालवृद्धेभ्यः कृपणेभ्यो ह्यदापयत् ॥ ३२, २८ ॥

दान देने के पश्चात् दोनों भाई सीता के साथ पिता को देखने चले—

दत्वा तु सह वैदेह्या ब्राह्मणेभ्यो धनं बहु।
जग्मतुः पितरं द्रष्टुं सीतया सह राघवौ ॥ ३३, १ ॥
ततो गृहीते प्रेष्याभ्यामशोभेतां तदायुधे।
मालादामभिरासक्ते सीतया समलंकृते ॥ ३३, २ ॥

राम को पैदल जाते देख कर नगरवासियों का आश्चर्य और वनजाने के समाचार से दुःख—

पदातिं सानुजं दृष्ट्वा ससीतं च जनास्तदा।
ऊचुर्बहुजना वाचः शोकोपहतचेतसः ॥ ३३, ५ ॥
"यं यान्तमनुयाति स्म चतुरङ्गबलं महत्।
तमेकं सीतया सार्धमनुयाति स्म लक्ष्मणः ॥ ३३, ६ ॥
निर्गुणस्यापि पुत्रस्य कथं स्याद् विनिवासनम्।
किं पुनर्यस्य लोकोऽयं जितो वृत्तेन केवलम्" ॥ ३३, ११ ॥
अनृशंसमनुक्रोशः श्रुतं शीलं दमः शमः।
राघवं शोभयन्त्येते षड्गुणाः पुरुषर्षभम् ॥ ३३, १२ ॥

नगरवासियों के नगर छोड़ कर श्रीराम के साथ बन जानेकी इच्छा—

वनं नगरमेवास्तु येन गच्छति राघवः।
अस्माभिश्च परित्यक्तं पुरं सम्पद्यतां वनम् ॥ ३३, २२ ॥

राजभवन में पहुँचकर श्रीराम ने सुमन्त्र को अपने आगमन की सूचना महाराज को देन के लिए कहा—

स तु वेश्म पुनर्मातुः कैलासशिखरप्रभम्।
अभिचक्राम धर्मात्मा मत्तमातङ्गविक्रमः ॥ ३३, २७ ॥
विनीतवीरपुरुषं प्रविश्य तु नृपालयम्।
ददर्शावस्थितं दीनं सुमन्त्रमविदूरतः ॥ ३३, २८ ॥
पितुर्निदेशेन तु धर्मवत्सलो वनप्रवेशे कृतबुद्धिनिश्चयः।
स राघवः प्रेक्ष्य सुमन्त्रमब्रवीन्निवेदयस्वागमनं नृपाय मे ॥ ३३, ३१॥

सुमन्त्र ने राजा को श्रीराम के आने की सूचना दी—

स रामप्रेषितः क्षिप्रं संतापकलुषेन्द्रियम् ।
प्रविश्य नृपतिं सूतो निःश्वसन्तं ददर्श ह ॥ ३४, २ ॥

आलोक्य च महाप्राज्ञः परमाकुलचेतनम् ।
राममेवानुशोचन्तं सूतः प्राञ्जलिरब्रवीत् ॥ ३४, ४ ॥

"अयं स पुरुषव्याघ्रो द्वारि तिष्ठति ते सुतः ।
ब्राह्मणेभ्यो धनं दत्वा सर्वं चवोपजीविनाम् ॥ ३४, ६ ॥

स त्वां पश्यतु भद्रं ते रामः सत्यपराक्रमः ।
सर्वान् सुहृद आपृछ्य त्वां हीदानीं दिदृक्षते ॥ ३४, ७ ॥

गमिष्यति महारण्यं तं पश्य जगतीपतिः ।
वृतं राजगुणैः सर्वैरादित्यमिव रश्मिभिः ॥ ३४, ८ ॥

राजा ने सुमन्त्र से कहा, 'मेरी सभी पत्नियों को इकट्ठा करो, सबों के साथ ही अपने प्यारे पुत्र को देखूँगा'—

स सत्यवाक्यो धर्मात्मा गाम्भीर्यात् सागरोपमः ।
आकाश इव निष्पङ्को नरेन्द्रः प्रत्युवाच तम्" ॥ ३४, ९ ॥

सुमन्त्रानय मे दारान् ये केचिदिह मामकाः ।
दारैः परिवृतः सर्वैर्द्रष्टुमिच्छामि राघवम् ॥ ३४, ७ ॥

सुमन्त्र ने महल जाकर सभी राज दाराओं को राजा के पास आने को कहा—

सोऽन्तः पुरमतीत्यैव स्त्रियस्ता वाक्यमब्रवीत् ।
"आर्यो ह्वयति वो राजा गम्यतां तत्र मा चिरम्" ॥ ३४, ११ ॥

राजशासन सुन कर साढ़े तीन सौ रानियाँ कौसल्या को घेर कर राजा के निकट पहुँच गईं—

एतमुक्ताः स्त्रियः सर्वाः सुमन्त्रेण नृपाज्ञया ।
प्रचक्रमुस्तद् भवनं भर्तुराज्ञाय शासनम् ॥ ३४, १२ ॥

अर्धसप्तशतास्तत्र प्रमदास्ताम्रलोचनाः ।
कौसल्यां परिवार्याथ शनैर्जग्मुर्धृतव्रताः ॥ ३४: १३ ॥

रानियों के आजाने पर राजाने सुमन्त्र से श्रीराम को बुलाने के लिए कहा—

आगतेषु च दारेषु समवेक्ष्य महीपतिः ।
उवाच राजा तं सूतं सुमन्त्रानय मे सुतम् ॥ ३४, १४ ॥

राजा ने श्रीराम को एक रात रुकने को कहा—

अद्य त्विदानीं रजनीं पुत्र मा गच्छ सर्वथा।
एकाहं दर्शनेनापि साधु तावच्चराम्यहम् ॥ ३४, ३३ ॥

श्रीराम ने उसी दिन चलने में गुणों का अनुभव किया, और पिता से कहा—

प्राप्स्यामि यानद्य गुणान् को मे श्वस्तान् प्रदास्यति।
अपक्रमणमेवातः सर्वकामैरहं वृणे ॥ ३४, ४० ॥

त्वामहं सत्यमिच्छामि नानृतं पुरुषर्षभ।
प्रत्यक्षं तव सत्येन सुकृतेन च ते शपे ॥ ३४, ४८ ॥

न च शक्यं मया तात स्थातुं क्षणमपि प्रभो।
स शोकं धारयस्वेमं नहि मेऽस्ति विपर्यये ॥ ३४, ४९ ॥

अर्थितो ह्यस्मि कैकेय्या वनं गच्छेति राघव।
मया चोक्तं व्रजामीति तत्सत्यमनुपालये ॥ ३४, ५० ॥

पिता हि दैवतं तात देवतानामपि स्मृतम्।
तस्माद् दैवतमित्येव करिष्यामि पितुर्वचः ॥ ३४, ५२ ॥

पुरं च राष्ट्रं च मही च केवला मया विसृष्टा भरताय दीयताम्।
अहं निदेशं भवतोऽनुपालयन् वनं गमिष्यामि चिराय सेवितुम् ।३४, ५४।

पुत्र के ऐसा कहने पर उन्होंने दुःख से अभिभूत हो उनका आलिङ्गन किया और फिर वह मूच्छित हो गिर गये—

एवं स राजा व्यसनाभिपन्नस्तापेन दुःखेन च पीड्यमानः।
आलिङ्ग्य पुत्रं सुविनष्टसंज्ञो भूमिं गतो नैव चिचेष्ट किंचित् ॥३४,५०॥

राजा के ससंज्ञ होने पर सुमन्त्र ने क्रोधपूर्ण वाग्बाणों द्वारा रानी से कहा-क्योंकि वह राजकुल के विनाश के लिये तुली हुई थी—

ततो निधूय सहसा शिरो निःश्वस्य चासकृत्।
पाणिं पाणौ विनिष्पिष्य दन्तान् कटकटाय्य च ॥ ३५ १ ॥

लोचने कोपसंरक्ते वर्णं पूर्वोचितं जहत्।
कोपाभिभूतः सहसा संतापमशुभं गतः ॥ ३५, २ ॥

मनः समीक्षमाणश्च सूतो दशरथस्य च।
कम्पयन्निव कैकेय्या हृदयं वाक्शरैः शितैः ॥ ३५, ३ ॥
वाक्यवज्रैरनुपमैर्निर्भिन्दन्निव चाशुभैः।
कैकेय्याः सर्वमर्माणि सुमन्त्रः प्रत्यभाषत ॥ ३५, ४ ॥

"यस्यास्तव पतिस्त्यक्तो राजा दशरथः स्वयम् ।
भर्ता सर्वस्य जगतः स्थावरस्य चरस्य च ॥ ३५, ५ ॥

न ह्यकार्यतमं किंचित्तव देवीह विद्यते ।
पतिघ्नीं त्वामहं मन्ये कुलघ्नीमपि चान्ततः ॥ ३५, ६ ॥

मावमंस्था दशरथं भर्तारं वरदं पतिम् ।
भर्तुरिच्छा हि नारीणां पुत्रकोट्या विशिष्यते ॥ ३५, ८ ॥

न च ते विषये कश्चिद् ब्राह्मणो वस्तुमर्हति ।
तादृशं त्वममर्यादमद्य कर्म करिष्यसि ॥ ३५, ११ ॥

आश्चर्यमिव पश्यामि यस्यास्ते वृत्तमीदृशम् ।
आचरन्त्या न विवृता सद्यो भवति मेदिनी ॥ ३५, १४ ॥

आभिजात्यं हि ते मन्ये यथा मातुस्तथैव च ।
नहि निम्बात् स्रवेत् क्षौद्रं लोके निगदितं वचः ॥ ३५, १७ ॥

सत्यश्चात्र प्रवादोऽयं लौकिकः प्रतिभाति मा ।
"पितॄन् समनुजायन्ते नरा मातरमङ्गना" ॥ ३५, २८ ॥

इति सान्त्वैश्च तीक्ष्णैश्च कैकेयीं राजसंसदि ।
भूयः संक्षोभयामास सुमन्त्रस्तु कृताञ्जलिः ॥ ३५, ३६ ॥

नैव सा क्षुभ्यते देवी न च स्म परिदूयते ।
न चास्या मुखवर्णस्य लक्ष्यते विक्रिया तदा ॥ ३५, ३७ ॥

तब राजा ने सुमन्त्र को आदेश दिया, कि 'धन धान्य सहित चतुरङ्गिणी सेना के साथ श्रीराम को विदा करो'।

सूत रत्नसुसम्पूर्णा चतुर्विधबला चमूः ।
राघवस्यानुयात्रार्थं क्षिप्रं प्रतिविधीयताम् ॥ ३६, २ ॥

धान्यकोशश्च यः कश्चिद् धनकोशश्च मामकः ।
तौ राममनुगच्छेतां वसन्तं निर्जने वने ॥ ३६, ७ ॥

यजन् पुण्येषु देशेषु विसृजंश्चाप्तदक्षिणाः ।
ऋषिभिश्चापि संगम्य प्रवत्स्यति सुखं वने ॥ ३६, ८ ॥

राजा की आज्ञा सुन कैकेयी सन्न रह गई और उसने कहा, 'धनहीन राज्य भरत लेना नहीं चाहेंगे'—

एवं ब्रुवति काकुत्स्थे कैकेय्या भयमागतम् ।
मुखं चाप्यगमच्छोषं स्वरश्चापि व्यरुध्यत ॥ ३६, १० ॥

सा विषण्णा च संत्रस्ता मुखेन परिशुष्यता ।
राजानमेवाभिमुखी कैकेयी वाक्यमब्रवीत् ॥ ३६, ११ ॥

राज्यं गतधन साधो पीतमण्डां सुरामिव ।
निरास्वाद्यतमं शून्यं भरतो नाभिपत्स्यते" ॥ ३६, १२ ॥

इसपर राजा ने डाँटा, तुम ने इसका करार पहले क्यों नहीं कराया ?

कैकेय्यां मुक्तलज्जायां वदन्त्यामतिदारुणम् ।
राजा दशरथो वाक्यमुवाचायतलोचनाम् ॥ ३६, १३ ॥

वहन्तं किं तुदसि मां नियुज्य धुरि माहिते ।
अनार्ये कृत्यमारब्धं किं न पूर्वमुपारुधः ॥ ३६, १४ ॥

क्रोधित कैकेयी ने उत्तर दिया—

तवैव वंशे सगरो ज्येष्ठपुत्रमुपारुधत् ।
असमञ्ज इति ख्यातं तथायं गन्तुमर्हति" ॥ ३६, १६ ॥

इस पर राजा ने कैकेयी को धिक्कारते हुए कहा कि, असमञ्जको तो मार्ग में खेलते हुए निरपराधी बालकों को सरयूनदी में फेंकने के कारण सगरने उसे त्याग किया था, पर श्रीराम ने कौनसा अपराध किया, जिससे बन जाँय ?

एवमुक्तो धिगित्येव राजा दशरथोऽब्रवीत् ।
व्रीडितश्च जनाः सर्वे सा च तन्नावबुध्यत ॥ ३६, १७ ॥

असमञ्जो गृहीत्वा तु क्रीडतः पथि दारकान् ।
सरय्वां प्रक्षिपन्नप्सु रमते तेन दुर्मतिः ॥ ३६, १९ ॥

ते दृष्ट्वा नागरा सर्वे क्रुद्धा राजानमब्रवन् ।
असमञ्जं वृणीष्वैकमस्मान् वा राष्ट्रवर्धन ॥ ३६, २० ॥

क्रीडतस्त्वेष नः पुत्रान् बालानुद्भ्रान्तचेतसः ।
सरय्वां प्रक्षिपन्मौर्ख्यादतुलां प्रीतिमश्नुते ॥ ३६, २२ ॥

स तासां वचनं श्रुत्वा प्रकृतीनां नराधिपः ।
तं तत्याजाहितं पुत्रं तासां प्रियचिकीर्षया ॥ ३६, २३ ॥

इत्येनमत्यजद् राजा सगरो वै सुधार्मिकः ।
रामः किमकरोत् पापं येनैवमुपरुध्यते" ॥ ३६, २६ ॥

सिद्धार्थ ने कैकेयी से रामका दोष बताने को कहा, उन्होंने यह भी कहा कि निरपराध को दण्डित करना इन्द्र को भी भस्म कर सकता है—

नहि कंचन पश्यामो राघवस्यागुणं वयम् ।
दुर्लभो ह्यस्य निरयः शशाङ्कस्येव कल्मषम् ॥ ३६, २७ ॥

अथवा देवि त्वं कंचिद् दोषं पश्यसि राघवे ।
तमद्य ब्रूहि तत्त्वेन तदा रामो विवास्यते ॥ ३६, २८ ॥
अदुष्टस्य हि संत्यागः सत्पथे निरतस्य च ।
निर्दहेदपि शक्रस्य द्युतिं धर्मविरोधवान् ॥ ३६, २९ ॥

राजा ने कैकेयी से कहा—'लो, मैं राज्य को छोड़ आज ही राम के साथ बन चलता हूं, तुम भरत के साथ राज भोगना—

श्रुत्वा तु सिद्धार्थवचो राजाश्रान्ततरस्वरः ।
शोकोपहतया वाचा कैकेयीमिदमब्रवीत् ॥ ३६, ३१ ॥

एतद्वचो नेच्छसि पापरूपे हितं न जानासि ममात्मनोऽथवा ।
आस्थाय मार्गं कृपणं कुचेष्टा चेष्टाहिते साधुपथादपेता ॥ ३६, ३२ ॥

अनुव्रजिष्याम्यहमद्य राम राज्यं परित्यज्य सुखं धनं च ।
सर्वे च राज्ञा भरतेन च त्वं यथा सुखं भुङ्क्ष्व चिराय राज्यम् ॥३६, ३३॥

इस बहस पर श्रीराम ने पिता से कहा, त्यक्तसंग के लिये अनुयात्राके सम्मान से क्या प्रयोजन है ?' भला जो हाथी दे दे, उसे उसके आलान और रज्जु के लिए क्या मोह ?

त्यक्तभोगस्य मे राजन् वने वन्येन जीवतः ।
किं कार्यमनुयात्रेण त्यक्तसंगस्य सर्वतः ॥ ३७, २ ॥
यो हि दत्त्वा द्विपश्रेष्ठं कक्ष्यायां कुरुते मनः ।
रज्जुस्नेहेन किं तस्य त्यजतः कुञ्जरोत्तमम् ॥ ३७, ३ ॥

मुझे तो चीर-वसन, खन्ती और एक पेटी ही चाहिए—

तथा मम सतां श्रेष्ठ किं ध्वजिन्या जगत्पते ।
सर्वाण्येवानुजानामि चीराण्येवानयन्तु मे ॥ ३७, ४ ॥

खनित्रपिटके चोभे समानयत गच्छत ।
चतुर्दश वने वासं वर्षाणि वसतो मम ॥ ३७, ५ ॥

निर्लज्ज कैकेयी ने स्वयं चीर लाकर श्रीराम से कहा 'पहन लो' । उस पर राम और लक्ष्मण ने उसे ग्रहण कर लिया—

अथ चीराणि कैकेयी स्वयमाहृत्य राघवम् ।
उवाच परिधत्स्वेति जनौघे निरपत्रपा ॥ ३७, ६ ॥

स चीरे पुरुषव्याघ्रः कैकेय्याः प्रतिगृह्य ते ।
सूक्ष्मवस्त्रमवक्षिप्य मुनिवस्त्राण्यवस्त ह ॥ ३७, ७ ॥
लक्ष्मणश्चापि तत्रैव विहाय वसने शुभे ।
तापसाच्छादने चैव जग्राह पितुरग्रतः ॥ ३७, ८ ॥

चीर परिधान के प्रयोग में अकुशला सीता ने पति से उसके धारणविधि पूछी और उसे एक हाथ में लेकर लज्जित हो खड़ी रही —

अथात्मपरिधानार्थं सीता कौशेयवासिनी ।
सम्प्रेक्ष्य चीरं संत्रस्ता पृषती वागुरामिव ॥ ३७, ९ ॥
साऽव्यपत्रपमाणेव प्रगृह्य च सुदुर्मनाः ।
कैकेय्याः कुशचीरे ते जानकी शुभलक्षणा ॥ ३७, १० ॥
अश्रुसम्पूर्णनेत्रा च धर्मज्ञा धर्मदर्शिनी ।
गन्धर्वराजप्रतिमं भर्तारमिदमब्रवीत् ॥ ३७, ११ ॥
कथं नु चीरं बध्नन्ति मुनयो वनवासिनः ।
इति ह्यकुशला सीता सा मुमोह मुहुर्मुहुः ॥ ३७, १२ ॥
कृत्वा कण्ठे स्म सा चीरमेकमादाय पाणिना ।
तस्थौ ह्यकुशला तत्र व्रीडिता जनकात्मजा ॥ ३७, १३ ॥

श्रीराम ने आकर सीता को चीर पहनाया—

तस्यास्तत् क्षिप्रमागत्य रामो धर्मभृतांवरः ।
चीरं बबन्ध सीतायाः कौशेयस्योपरि स्वयम् ॥ ३७ १४ ॥
रामं प्रेक्ष्य तु सीताया बध्नन्तं चीरमुत्तमम् ।
अन्तःपुरचरा नार्यो मुमुचुर्वारिनेत्रजम् ॥ ३७ १५ ॥
ऊचुश्च परमायत्ता रामं ज्वलिततेजसम् ।

सीता की दशा देख कर महल की रानियों ने सीता को वन लेजाने के लिये श्रीराम को मना किया—

वत्स नैव नियुक्तेयं वनवासे मनस्विनी ॥ ३७, १६ ॥
पितुर्वाक्यानुरोधेन गतस्य विजनं वनम् ।
तावद् दर्शनमस्या नः सफलं भवतु प्रभो ॥ ३७, १७ ॥
कुरु नो याचनां पुत्र सीता तिष्ठतु भामिनी ।
धर्मनित्यःस्वयं स्थातुं न हीदानीं त्वमिच्छसि ॥ ३७, १९ ॥

सीता के चीर ग्रहण करने पर वसिष्ठ जी ने बड़े दुःखी हो कैकेयी को फट कारते हुए कहा कि राम के बन जाने से सारी प्रजायें और हम लाग उनके साथ जायंगे, तुम अकेली रहागी, सीता अपने समुचित वेश में ही जायगी—

चीरं गृहीतं तु तथा सबाष्पो नृपतेर्गुरुः।
निवार्य सीतां कैकेयीं वसिष्ठो वाक्यमब्रवीत् ॥ ३७, २१ ॥
अतिप्रवृत्ते दुर्मेधे कैकेयि कुलपांसिनि।
वञ्चयित्वा तु राजानं न प्रमाणेऽवतिष्ठसि ॥ ३७, २२ ॥
"न गन्तव्य वनं देव्या सीतया शीलवर्जिते।
अनुष्ठास्यति रामस्य सीता प्रकृतमासनम् ॥ ३७, २३ ॥
आत्मा हि दाराः सर्वेषां दारसंग्रहवर्तिनाम्।
आत्मेयमिति रामस्य पालयिष्यति मेदिनम् ॥ ३७, २४ ॥
अथ यास्यति वैदेही वनं रामेण संगता।
वयमत्रानुयास्यामः पुरं चेदं गमिष्यति ॥ ३७, २५, ॥
अन्तपालाश्च यास्यन्ति सदारो यत्र राघवः।
सहोपजीव्यं राष्ट्रं च पुरञ्च सपरिच्छदम ॥ ३७, २६ ॥
भरतश्च सशत्रुघ्नश्चीरवासा वनेचरः।
वने वसन्तं काकुत्स्थमनुवत्स्यति पूर्वजम् ॥ ३७, २७ ॥
ततः शून्यां गतजनां वसुधां पादपैः सह।
त्वमेका शाधि दुर्वृत्ता प्रजानामहिते 'स्थता ॥ ३७, २८ ॥
नहि तद् भविता राष्ट्रं यत्र रामो न भूपतिः।
तद् वनं भविता राष्ट्रं यत्र रामो निवत्स्यति ॥ ३७, २९ ॥
न ह्यदत्तां महीं पित्रा भरतः शास्तुमिच्छति।
त्वयि वा पुत्रवद् वस्तुं यदि जातो महीपते ॥ ३७, ३० ॥
यद्यपि त्वं क्षितितलाद् गगन चोत्पतिष्यसि।
पितृवंशचरित्रज्ञः सोऽन्यथा न करिष्यति ॥ ३७, ३१ ॥
तत्त्वया पुत्रगर्धिन्या पुत्रस्य कृतमप्रियम्।
लोके नहि स विद्येत यो न राममनुव्रतः ॥ ३७, ३२ ॥
द्रक्ष्यस्यद्यैव कैकेयि पशुव्यालमृगद्विजान्।
गच्छतः सह रामेण पादपांश्च तदुन्मुखान् ॥ ३७, ३३ ॥

एकस्य रामस्य वने निवासस्त्वया वृतः कैकयराजपुत्रि ।
विभूषितेयं प्रतिकर्मनित्या वसत्वरण्ये सह राघवेण ॥ ३७, ३५ ॥

यानैश्च मुख्यैः परिचारकैश्च सुसंवृता गच्छतु राजपुत्री ।
वस्त्रैश्च सर्वैः सहितैर्विधानैर्नेयं वृता ते वरसम्प्रदाने ॥ ३७, ३६ ॥

श्रीगुरुवर के ऐसा कहने पर भी सीता वेषभूषा आदि में अपने पति का ही अनुसरण करती रही—

तस्मिंस्तथा जल्पति विप्रमुख्ये गुरौ नृपस्याप्रतिमप्रभावे ।
नैव स्म सीता विनिवृत्तभावा प्रियस्य भर्तुः प्रतिकारकामा ॥ ३७, ३७ ॥

जनमत का आक्रोश—

तस्यां चीरं वसानायां नाथवत्यामनाथवत् ।
प्रचुक्रोश जनः सर्वो धिक् त्वां दशरथं त्विति ॥ ३८, २ ॥

उस कोलाहल से व्यथित हो राजा कैकेयी से भर्त्सनापूर्वक कहा कि तुमने राम के ही अभिषेक न करने की प्रतिज्ञा करायी थी, सीता के कुशचीर ग्रहण करा कर विदा करने की नहीं, तब ऐसा पाप क्यों कर रही हो ?—

तेन तत्र प्रणादेन दुःखितः स महीपतिः ।
चिच्छेद जीविते श्रद्धां धर्मे यशसि चात्मनः ॥ ३८, २ ॥

स निःश्वस्योष्णमैक्ष्वाकस्तां भार्यामिदमब्रवीत् ।
"कैकेयि कुशचीरेण न सीता गन्तुमर्हति ॥ ३८, ३ ॥
सुकुमारी च बाला च सततं च सुखोचिता ।
नेयं वनस्य योग्येति सत्यमाह गुरुर्मम ॥ ३८, ४ ॥

चीराण्यपास्याज्जनकस्य कन्या नेयं प्रतिज्ञा मम दत्तपूर्वा ।
यथासुखं गच्छति राजपुत्री वनं समग्रा सह सर्वरत्नैः ॥ ३८, ६ ॥
आजीवनार्हेण मया नृशंसा कृता प्रतिज्ञा नियमेन तावत् ।
त्वया हि बाल्यात् प्रतिपन्नमेतत् तन्मा दहेद् वेणुमिवात्मपुष्पम्" ॥ ३८, ७ ॥

प्रतिज्ञातं मया तावत् त्वयोक्तं देवि शृण्वता ।
रामं यदभिषेकाय त्वमिहागतमब्रवीः ॥ ३८, ११ ॥

तत्त्वेतत् समतिक्रम्य निरयं गन्तुमिच्छसि ।
मैथिलीमपि याहि त्वमीक्ष्यसे चीरवासिनीम् ॥ ३८, १२ ॥

वन प्रस्थान करते श्रीराम का राजा दशरथ से निवेदन—

एवं ब्रुवन्तं पितरं रामः सम्प्रस्थितो वनम् ।

अवाक्शिरः समासीनमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ३८, १३ ॥
"इयं धार्मिक कौशल्या मम माता यशस्विनी ।
वृद्धा चाक्षुद्रशीला च न च त्वां देव गर्हते ॥ ३८, १४ ॥

श्रीराम ने राजा से अपनी वृद्धा माता की अवस्था पर कृपा दृष्टि रखने की प्रार्थना की—

मया विहीनां वरद प्रपन्नां शोकसागरम् ।
अदृष्टपूर्वव्यसनां भूयः सम्मन्तुमर्हसि ॥ ३८, १५ ॥
इमां महेन्द्रोपमजातगर्धिनीं तथा विधातुं जननीं ममार्हसि ।
यथा वनस्थे मयि शोककर्षिता न जीवनं न्यस्य यमक्षयं व्रजेत् ॥३८,१७॥

श्रीराम की बात सुन राजा दशरथ का अचेत होना और चेतना आने पर उन का विलाप—

रामस्य तु वचः श्रुत्वा मुनिवेषधरं च तम् ।
समीक्ष्य सह भार्याभी राजाविगतचेतनः ॥ ३९, १ ॥
स मुहूर्त्तमिवासंज्ञो दुःखितश्च महीपतिः ।
विललाप महाबाहू राममेवानुचिन्तयन् ॥ ३९, ३ ॥
मन्ये खलु मया पूर्वं विवत्सा बहवः कृता ।
प्राणिनो हिंसिता वापि तन्मामिदमुपस्थितम् ॥ ३९, ४ ॥
एकस्याः खलु कैकेय्याः कृतेऽयं खिद्यते जनः ।
स्वार्थे प्रयतमानायाः संश्रित्य निकृतिं त्विमाम् ॥ ३९, ७ ॥
एवमुक्त्वा तु वचनं बाष्पेण विहितेन्द्रियः
रामेति सकृदेवोक्त्वा व्याहर्तुं न शशाक सः ॥ ३९, ८ ॥
संज्ञां तु प्रतिलभ्यैव मुहूर्त्तात् स महीपतिः ।
नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यां सुमन्त्रमिदमब्रवीत् ॥ ३९, ९ ॥

संज्ञा प्राप्त होने पर सुमन्त्र को रथादि प्रस्तुत करने का, राजा का आदेश—

औपवाह्यं रथं युक्त्वा त्वमायाहि हयोत्तमैः ।
प्रापयैनं महाभागमितो जनपदात् परम् ॥ ३९, १० ॥
एवं मन्ये गुणवतां गुणानां फलमुच्यते ।
पिता माता च यत्साधुर्वीरो निर्वास्यते वनम् ॥ ३९, ११ ॥

सुमन्त्र को शीघ्र सीता के लिये बहुमूल्य वसनभूषण लाने का आदेश—

राज्ञो वचनमाज्ञाय सुमन्त्रः शीघ्रविक्रमः।
योजयित्वा ययौ तत्र रथमश्वैरलंकृतम् ॥ ३९, १२ ॥

राजा सत्वरमाहूय व्यापृतं वित्तसंचये।
उवाच देशकालज्ञो निश्चितं सर्वतः शुचि ॥ ३९, १४ ॥

वासांसि च वरार्हाणि भूषणानि महान्ति च।
वर्षाण्येतानि संख्याय वैदेह्याः क्षिप्रमानय ॥ ३९, १५ ॥

सुमन्त्र ने राजा की आज्ञा मान वस्त्राभूषण लाये और सीता ने उन्हें धारण किया—

नरेन्द्रेणैवमुक्तस्तु गत्वा कोशगृहं ततः।
प्रायच्छत् सर्वमाहृत्य सीतायै क्षिप्रमेव तत् ॥ ३९, १६ ॥

सा सुजाता सुजातानि वैदेही प्रस्थिता वनम्।
भूषयामास गात्राणि तैर्विचित्रैर्विभूषणैः ॥ ३६, १७ ॥

कौसल्या ने अपनी पुत्रवधू सीता को छाती से लगा उसे नारीधर्म का उपदेश दिया और दुष्ट नारी के लक्षण बताये—

तां भुजाभ्यां परिष्वज्य श्वश्रूर्वचनमब्रवीत्।
अनाचरन्तीं कृपणं मूर्ध्न्युपाघ्राय मैथिलीम् ॥ ३९, १९ ॥
"असत्यः सर्वलोकेऽस्मिन् सततं सत्कृताः प्रियैः।
भर्त्तारं नानुमन्यन्ते विनिपातगतं स्त्रियः ॥ ३९, २० ॥

एष स्वभावो नारीणामनुभूय पुरा सुखम्।
अल्पामप्यापदं प्राप्य दुष्यन्ति प्रजहत्यपि ॥ ३९, २१ ॥

असत्यशीला विकृता दुर्गा अहृदया सदा।
असत्यः पापसंकल्पाः क्षणमात्रविरागिणी ॥ ३९, २२ ॥

न कुलं न कृतं विद्या न दत्तं नापि संग्रहः।
स्त्रीणां गृह्णाति हृदयमनित्यहृदया हि ताः ॥ ३९, २३ ॥

कौसल्या ने सती नारी के लक्षण, बताकर सीता को अपने पति का आदर करने की सलाह दी—

साध्वीनां तु स्थितानां तु शीले सत्ये श्रुते स्थिते।
स्त्रीणां पवित्रं परमं पतिरेको विशिष्यते ॥ ३९, २४ ॥

स त्वया नावमन्तव्यः पुत्रः प्रव्राजितो वनम् ।
तव देवसमस्त्वेष निर्धनः सधनोऽपि वा ॥ ३९, २५ ॥

सीता द्वारा सास के उपदेशों का अनुमोदन करना और इसका कारण बताना—

विज्ञाय वचनं सीता तस्या धर्मार्थसंहितम् ॥
कृत्वाञ्जलिमुवाचेदं श्वश्रूमभिमुखे स्थिता ॥ ३९, २६ ॥
"करिष्ये सर्वमेवाहमार्या यदनुशास्ति माम् ।
अभिज्ञास्मि यथा भर्तुर्वर्तितव्यं श्रुतं च मे ॥ ३९, २७ ॥
न मामसज्जनेनार्या समानयितुमर्हसि ।
धर्माद् विचलितुं नाहमलं चन्द्रादिवप्रभा ॥ ३९, २८ ॥
नातन्त्री वाद्यते वीणा नाचक्रो विद्यते रथः ।
नापतिः सुखमेधेत या स्यादपि शतात्मजा ॥ ३९, २९ ॥
मितं ददाति हि पिता मितं भ्राता मितं सुतः ।
अमितस्य तु दातारं भर्तारं का न पूजयेत् ॥ ३९, ३० ॥
साहमेवं गता श्रेष्ठा श्रुतधर्मपरावरा ।
आर्ये किमवमन्येयं स्त्रिया भर्ता हि दैवतम्" ॥ ३९, ३१ ॥

सीता की बात से सास को बड़ी प्रसन्नता हुई । हर्षशोक मिश्रित आंसू निकल आये, उनकी आँखों से—

सीताया वचनं श्रुत्वा कौसल्या हृदयङ्गमम् ।
शुद्धसत्त्वा मुमोचाश्रु सहसा दुःखहर्षजम् ॥ ३९, ३२ ॥

श्रीराम ने अपनी माता को दुःखित न होने के लिये ढाढ़स दिया—

तां प्राञ्जलिरभिप्रेक्ष्य मातृमध्येऽतिसत्कृताम् ।
रामः परमधर्मात्मा मातरं वाक्यमब्रवीत् ॥ ३९, ३३ ॥
"अम्ब ! मा दुःखिता भूत्वा पश्येस्त्वं पितरं मम ।
क्षयोऽपि वनवासस्य क्षिप्रमेव भविष्यति ॥ ३९, ३४ ॥
सुप्तायास्ते गमिष्यन्ति नव वर्षाणि पञ्च च ।
समग्रमिह सम्प्राप्तं मां द्रक्ष्यसि सुहृद्वृतम्" ॥ ३९, ३५ ॥

श्रीराम ने सभी अन्य माताओं से भी क्षमा याचना की—

संवासात् परुषं किञ्चिदज्ञानादपि यत् कृतम् ।
तन्मे समुपजानीत सर्वाश्चामन्त्रयामि वः ॥ ३९, ३६ ॥

विदाई काल में पिता-माताओं को श्रीराम लक्ष्मण सीता का विनीत अभिवादन—

अथ रामश्च सीता च लक्ष्मणश्च कृताञ्जलिः ।
उपसंगृह्य राजानं चक्रुर्दीनाः प्रदक्षिणः ॥ ४०, १ ॥
तं चापि समनुज्ञाप्य धर्मज्ञः सह सीतया ।
राघवः शोकसम्मूढो जननीमभ्यवादयत् ॥ ४०, २ ॥
अन्वेक्षं लक्ष्मणो भ्रातुः कौसल्यामभ्यवादयत् ।
अपि मातुः सुमित्राया जग्राह चरणौ पुनः ॥ ४०, ३ ॥

प्रणाम करते समय लक्ष्मण को मां सुमित्राने कुलधर्मानुसार अपने ज्येष्ठ भाई की अप्रमाद सेवा करने का उपदेश दिया—

तं वन्दमानं रुदती माता सौमित्रीमब्रवीत् ।
हितकामा महाबाहुं मूर्ध्न्युपाघ्राय लक्ष्मणम् ॥ ४०, ४ ॥
सृष्टस्त्वं वनवासाय स्वनुरक्तः सुहृज्जने ।
रामे प्रमादं मा कार्षीः पुत्र भ्रातरि गच्छति ॥ ४०, ५ ॥
व्यसनी वा समृद्धो वा गतिरेष तवानघ ।
एष लोके सतां धर्मो यज्ज्येष्ठवशगो भवेत् ॥ ४०, ६ ॥
इदं हि वृत्तमुचितं कुलस्यास्य सनातनम् ।
दानं दीक्षा च यज्ञेषु तनुत्यागो मृधेषु च ॥ ४०, ७ ॥

लक्ष्मण से इस प्रकार कह, सुमित्राने श्रीराम को भी प्रस्थान की आज्ञा दी—

लक्ष्मण त्वेवमुक्त्वासौ संसिद्धं प्रियराघवं ।
सुमित्रा गच्छ गच्छेति पुनः पुनरुवाच तम् ॥ ४०, ८ ॥

फिर लक्ष्मण को उसने श्रीराम को दशरथ, सीता को सुमित्रा एवं वन को अयोध्या मानने (समझने) को कहा—

रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम् ।
अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छ तात यथासुखम् ॥ ४०, ९ ॥

सुमन्त्र ने रथ ला कर श्रीराम से रथारूढ होने को कहा—

रथमारोह भद्रं ते राजपुत्र महायशः ।
क्षिप्रं त्वां प्रापयिष्यामि यत्र मां राम वक्ष्यसे ॥ ४०, ११ ॥

अलंकृत हो पहले सीता रथ पर चढ़ीं—

तं रथं सूर्यसंकाशं सीता हृष्टेन चेतसा।
आरुरोह वरारोहा कृत्वालंकारमात्मनः ॥ ४०, १३ ॥

वनवासं हि संख्याय वासांस्याभरणानि च।
भर्तारमनुगच्छन्त्यै सीतायै श्वशुरो ददौ ॥ ४०, १४ ॥

पुनः रथ के पिछले भाग में आवश्यक सामानों को रखा और दोनों भाईयों के रथारूढ़ होने पर सुमन्त्र ने रथ हाँका—

तथैवायुधजातानि भ्रातृभ्यां कवचानि च।
रथोपस्थे प्रविन्यस्य सचर्मकठिनं च यत् ॥ ४०, १५ ॥

अथो ज्वलनसंकाशं चामीकरविभूषितम्।
तमारुरुहतुस्तूर्णं भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ ४०, १६ ॥

सीता तृतीयानारूढान् दृष्ट्वा रथमचोदयत्।
सुमन्त्रः सम्मतानश्वान् वायुवेगसमाञ्जवे ॥ ४०, १७ ॥

श्रीराम के प्रति नागरिकों का उद्भ्रान्त प्रेम तथा उनके द्वारा सीता और लक्ष्मण के भाग्यों को सराहना—

ततः सबालवृद्धा सा पुरी परमपीडिता।
राममेवाभिदुद्राव घर्मार्तः सलिलं यथा ॥ ४०, २० ॥

पार्श्वतः पृष्ठतश्चापि लम्बमानास्तदुन्मुखाः।
बाष्पपूर्णमुखाः सर्वे तमूचुर्भृशनिःस्वनाः ॥ ४०, २१ ॥

संयच्छ वाजिनां रश्मीन् सूत याहि शनैः शनैः।
मुखं द्रक्ष्यामि रामस्य दुर्दर्शं नो भविष्यति ॥ ४०, २२ ॥

कृतकृत्या हि वैदेही छायेवानुगता पतिम्।
न जहाति रता धर्मे मेरुमर्कप्रभा यथा ॥ ४०, २४ ॥

अहो लक्ष्मण सिद्धार्थः सततं प्रियवादिनम्।
भ्रातरं देवसंकाशं यस्त्वं परिचरिष्यसि ॥ ४०, २५ ॥

महत्येषा हि ते बुद्धिरेष चाभ्युदयो महान्।
एष स्वर्गस्य मार्गश्च यदेनमनुगच्छसि ॥ ४०, २६ ॥

राजा दशरथ की व्याकुल दशा; प्रियपुत्रों के प्रस्थान करते समय उन्हें देखने के हेतु, बाहर दौड़ पड़ना—

अथ राजा वृतः स्त्रीभिर्दीनाभिर्दीनचेतनः।
निर्जगाम प्रियं पुत्रं द्रक्ष्यामीति ब्रुवन् गृहात् ॥ ४०, २८ ॥

पिता हि राजा काकुत्स्थः श्रीमान् सन्नस्तदा बभौ ।
परिपूर्णः शशीकाले ग्रहेणोपप्लुतो यथा ॥ ४०, २९ ॥

अपने पीछे दुःख भार से पीड़ित माता-पिता को देख कर श्रीराम ने सारथी को शीघ्र आगे निकल जाने को प्रेरित किया, किन्तु जनता उन्हें ठहरनेके लिये कह रही थी; इस प्रकार सूत कुछ करने में समथ नहीं होते थे—

स च श्रीमानचिन्त्यात्मा रामो दशरथात्मजः ।
सूतं संचदयामास 'त्वरितं वाह्यतामिति' ॥ ४०, ३१ ॥
रामो 'याहीति' तं सूतं 'तिष्ठेति' च जनस्तथा ।
उभय नाशकत् सूतः कर्तुमध्वनि चोदितः ॥ ४०, ३२ ॥

श्रीराम ने अपने माता पिता की हृदयद्रावक दयनीय दशा देखी और अपने प्रिय के दुखद कर्णकटु शब्द सुने, तथा सारथी को दशरथ ने रथ ठहराने को कहा और राम ने आगे चलने को कहा । दो प्रकार के आदेश सुनकर सुमन्त्र स्वयं द्विविधा में पड़े थे—

दृष्ट्वा तु नृपतिः श्रीमानेकचित्तगतं पुरम् ।
निपपातैव दुःखेन कृत्तमूल इव द्रुमः ॥ ४०, ३६ ॥
ततो हलहलाशब्दो जज्ञे रामस्य पृष्ठतः ।
नराणां प्रेक्ष्य राजानं सीदन्त भृशदुःखितम् ॥ ४०, ३७ ॥
अन्वीक्षमाणो रामस्तु विषण्णं भ्रान्तचेतसम् ।
राजानं मातरं चैव ददर्शानुगतौ पथि ॥ ४०, ३९ ॥
स बद्ध इव पाशेन किशोरो मातरं यथा ।
धर्मपाशेन संयुक्तः प्रकाशं नाभ्युदैक्षत ॥ ४०, ४० ॥
पदातिनौ च यानार्हावदुःखार्हौ सुखोचितौ ।
दृष्ट्वा संचोदयामास 'शीघ्रंयाहीति' सारथिम ॥ ४०, ४१ ॥
प्रत्यागारमिवायान्ती सवत्सा वत्सकारणात् ।
बद्धवत्सा यथा धेनु राममाताभ्यधावत ॥ ४०, ४३ ॥
तथा रुदन्तीं कौसल्यां रथं तमनुधावतीम् ।
क्रोशन्तीं राम रामेति हा सीते लक्ष्मणेति च ॥ ४०, ४४ ॥
रामलक्ष्मणसीतार्थं स्रवन्तीं वारि नेत्रजम् ।
असकृत् प्रैक्षत स तां नृत्यन्तीमिवमातरम् ॥ ४०, ४५ ॥

'तिष्ठेति राजा' चुक्रोश 'याहि याहीति' राघवः।
सुमन्त्रस्य बभूवात्मा चक्रयोरिव चान्तरा ॥ ४०, ४६ ॥

अन्त में श्रीराम ने सारथी से कहा कि आगे बढ़ चलो यदि मिलने पर राजा पूछें, तो उनको कह देना कि मैंने आप के आदेश सुना ही न था—

'नाश्रौषमिति' राजानमुपलब्धोऽपि वक्ष्यसि।
चिरं दुःखस्य पापिष्ठमिति रामस्तमब्रवीत् ॥ ४०, ४७ ॥

स रामस्य वचः कुर्वन्ननुज्ञाप्य च तं जनम्।
व्रजतोऽपि हयाञ्छीघ्रं चोदयामास सारथिः ॥ ४०, ४८ ॥

मन्त्रियों ने राजा से सविनय अनुरोध किया कि वे अब घर लौट चलें क्योंकि जिसको पुनः लौटाने की कामना हो उसको दूर तक नहीं पीछा करना चाहिये—

यमिच्छेत् पुनरायातं नैनं दूरमनुव्रजेत्।
इत्यामात्यो महाराजमूचुर्दशरथं वचः ॥ ४०, ५० ॥

तेषां वचः सर्वगुणोपपन्नः प्रस्विन्नगात्रः प्रविषण्णरूपः।
निशम्य राजा कृपणः सभार्यो व्यवस्थितस्तं सुतमीक्षमाणः ॥४०, ५१॥

अन्तःपुर में श्रीराम के लिये करुण विलाप—

तस्मिंस्तु पुरुषव्याघ्रे निष्क्रामति कृताञ्जलौ।
आर्तशब्दो हि संजज्ञे स्त्रीणामन्तःपुरे महान् ॥ ४१, १ ॥

अनाथस्य जनस्यास्य दुर्बलस्य तपस्विनः।
यो गतिं शरणं चासीत् स नाथः क्व नु गच्छति ॥ ४१,२ ॥

न क्रुध्यत्यभिशप्तोऽपि क्रोधनीयानि वर्जयन्।
क्रुद्धान् प्रसादयन् सर्वान् समदुःखः क्व गच्छति ॥ ४१, ३ ॥

त्रिशङ्कुर्लोहिताङ्गश्च बृहस्पतिबुधावपि।
दारुणाः सोममभ्येत्य ग्रहाः सर्वे व्यवस्थिताः ॥ ४१, ११ ॥

नक्षत्राणि गतार्चींषि ग्रहाश्च गततेजसः।
विशाखाश्च सधूमाश्च नभसि प्रचकाशिरे ॥ ४१, १२ ॥

शोकसंतप्त अयोध्या निवासी आहार विहारादि छोड़ कर केवल राजा को ही कोसने लगे—

अकस्मान्नागरः सर्वो जनो दैन्यमुपागमत्।
आहारे वा विहारे वा न कश्चिदकरोन्मनः ॥ ४१, १५ ॥

शोकपर्यायसंतप्तः सततं दीर्घमुच्छ्वसन् ।
अयोध्यायां जनः सर्वश्चुक्रोश जगतीपतिम् ॥ ४१, १६ ॥

अनर्थिनः सुताः स्त्रीणां भर्तारो भ्रातरस्तथा ।
सर्वे सर्वं परित्यज्य राममेवान्वचिन्तयन् ॥ ४१, १९ ॥

जब तक उड़ती धूल दिखाई पड़ती रही, राजा देखते ही रहे। उसके ओझल हो जाने पर वे मूर्छित हो भूमि पर गिर पड़े—

यावद् राजा प्रियं पुत्रं पश्यत्यत्यन्तधार्मिकम् ।
तावद् व्यवर्द्धते वास्य धरण्यां पुत्रदर्शने ॥ ४२, २ ॥

न पश्यति रजोऽप्यस्य यदा रामस्य भूमिपः ।
तदार्तश्च विषण्णश्च पपात धरणीतले ॥ ४२, ३ ॥

तस्य दक्षिणमन्वागात् कौसल्या बाहुमङ्गना ।
परं चास्यान्वगात् पार्श्वं कैकेयी सा सुमध्यमा ॥ ४२, ४ ॥

राजा ने कैकेयी का पूर्ण परित्याग किया और कहा कि यदि भरत भी इस दुरभिसंधि में हों तो उनका दिया हुआ पितृक्रियादि सम्बन्धी दान मुझे प्राप्त नहीं हो—

तां नयेन च सम्पन्नो धर्मेण विनयेन च ।
उवाच राजा कैकेयीं समीक्ष्य व्यथितेन्द्रियः ॥ ४२, ५ ॥

कैकेयि मामकाङ्गानि मा स्प्राक्षीः पापनिश्चये ।
नहि त्वां द्रष्टुमिच्छामि न भार्या न च बान्धवी ॥ ४२, ६ ॥

ये च त्वमनुजीवन्ति नाहं तेषां न ते मम ।
केवलार्थपरां हि त्वां त्यक्तधर्मां त्यजाम्यहम् ॥ ४२, ७ ॥

अगृह्णां यच्च ते पाणिमग्निं पर्यणयं च यत् ।
अनुजानामि तत् सर्वमस्मिंल्लोके परत्र च ॥ ४२, ८ ॥

भरतश्चेत् प्रतीतः स्याद् राज्यं प्राप्य तदव्ययम् ।
यन्मे स दद्यात् पित्रर्थं मा मां तद्दत्तमागमत् ॥ ४२, ९ ॥

पुत्रशोक से सन्तप्त एवं धूल से सने हुए राजा अतिसंतप्त हुए—

अथ रेणुसमुद्ध्वस्तं समुत्थाप्य नराधिपम् ।
न्यवर्तत तदा देवी कौसल्या शोककर्षिता ॥ ४२, १० ॥

हत्वेव ब्राह्मणं कामात् स्पृष्ट्वाग्निमिव पाणिना ।
अन्वतप्यत धर्मात्मा पुत्रं संचिन्त्य राघवम् ॥ ४२, ११ ॥

निवृत्यैव निवृत्यैव सीदतो रथवर्त्मसु ।
राज्ञो नातिबभौ रूपं ग्रस्तस्यांशुमतो यथा ॥ ४२, १२ ॥

नगर के अन्त तक पहुँच कर दुःखी राजा राम और सीता के विषय में विलाप करते हुए लोगों के साथ घर में प्रवेश किये—

विललाप स दुःखार्तः प्रियं पुत्रमनुस्मरन् ।
नगरान्तमनुप्राप्त बुद्ध्वा पुत्रमथाब्रवीत् ॥ ४२, १३ ॥

यः सुखेनोपधानेषु शेते चन्दनरूषितः ।
वीज्यमानो महार्हाभिः स्त्रीभिर्मम सुतोत्तमः ॥ ४२, १५ ॥

स नूनं क्वचिदेवाद्य वृक्षमूलमुपाश्रितः ।
काष्ठं वा यदि वा वा श्मानमुपधाय शयिष्यते ॥ ४२, १६ ॥

सा नूनं जनकस्येष्टा सुता सुखसदोचिता ।
कण्टकाक्रमणक्रान्ता वनमद्य गमिष्यति ॥ ४२, १९ ॥

सकामा भव कैकेयि विधवा राज्यमावस ।
नहि तं पुरुषव्याघ्रं विना जीवितुमुत्सहे ॥ ४२, २१ ॥

इत्येवं विलपन् राजा जनौघेनाभिसंवृतः ।
अपस्नात् इवारिष्टं प्रविवेश गृहोत्तमम् ॥ ४२, २३ ॥

विलखते हुए राजा दशरथ ने सेवकों को कौसल्या के भवन में ही अपने को पहुँचा देने को कहा । उन लोगों ने वैसा ही किया—

अथ गद्गदशब्दस्तु विलपन् वसुधाधिपः ।
उवाच मृदुमन्दार्थं वचनं दीनमस्वरम् ॥ ४२, २६ ॥

कौसल्याया गृहं शीघ्रं राममातुर्नयन्तु माम् ।
न ह्यन्यत्र ममाश्वासो हृदयस्य भविष्यति" ॥ ४२, २७ ॥

इति ब्रुवन्तं राजानमनयन् द्वारदर्शिनः ।
कौसल्याया गृहं तत्र न्यवेश्यत विनीतवत् ॥ ४२, २८ ॥

कौसल्या से राजा ने दीनस्वर में कहा, मुझे अपने हाथ से स्पर्श करो । देवि ! राम की ओर गई हुई मेरी दृष्टि आज भी लौट नहीं रही है—

अथ रात्र्यां प्रपन्नायां कालरात्र्यामिवात्मनः ।
अर्धरात्रे दशरथः कौसल्यामिदमब्रवीत् ॥ ४२, ३२ ॥

न त्वां पश्यामि कौसल्ये साधु मां पाणिना स्पृश ।
रामं मेऽनुगता दृष्टिरद्यापि न निवर्तते ॥ ४२, ३४ ॥

एकान्त में महारानी कौसल्या राजा से अपने पुत्र के प्रति कैकेयी के दुर्व्यवहार एवं उसकी क्रूरता के बारे में कहती हुई बोली, "राम बन में कष्टों को कैसे भोगते होंगे ? और उन सबों को मैं कब देखूंगी ? अब मैं शोक से जल रही हूँ"—

ततः समीक्ष्य शयने सन्नं शोकेन पार्थिवम् ।
कौसल्या पुत्र शोकार्ता तमुवाच महीपतिम् ॥ ४३, १ ॥

"राघवे नरशार्दूले विषं मुक्त्वा हि जिह्मगा ।
विचरिष्यति कैकेयी निर्मुक्तेव हि पन्नगी ॥ ४३, २ ॥

विवास्य रामं सुभगा लब्धकामा समाहिता ।
त्रासयिष्यति मां भूयो दुष्टाहिरिव वेश्मनि ॥ ४३, ३ ॥

अथास्मिन् नगरे रामश्चरन् भैक्ष्यं गृहे वसेत् ।
कामकारो वरं दातुमपि दासं ममात्मजम् ॥ ४३, ४ ॥

नागराजगतिर्वीरो महाबाहुर्धनुर्धरः ।
वनमाविशते नूनं सभार्यः सहलक्ष्मणः ॥ ४३, ६ ॥

वने त्वदृष्टदुःखानां कैकेय्यानुमते त्वया ।
त्यक्तानां वनवासाय कान्ववस्था भविष्यति ॥ ४३, ७ ॥

अपीदानीं स कालः स्यान्मम शोकक्षयः शिवः ।
सहभार्यं सहभ्रात्रा पश्येयमिह राघवम् ॥ ४३, ९ ॥

कदा सुमनसः कन्या द्विजातीनां फलानि च ।
प्रदिशन्त्यः पुरीं हृष्टाः करिष्यन्ति प्रदक्षिणम् ॥ ४३, १५ ॥

न हि मे जीविते किंचित् सामर्थ्यमिह कल्प्यते ।
अपश्यन्त्याः प्रियं पुत्रं लक्ष्मणं च महाबलम् ॥ ४३, २० ॥

अयं हि मां दीपयतेऽद्य वह्निस्तनूज-शोकप्रभवो महाहितः ।
महीमिमां रश्मिभिरुत्तमप्रभो यथा निदाघे भगवान् दिवाकरः ॥४३,२१॥

श्रीराम की प्रशंसा करती हुई एवं पूर्ण तर्क के साथ श्रीराम के ऐश्वर्य वर्णन करती हुई, माता सुमित्रा द्वारा शीघ्र राज्याभिषेक में सकुशल पहुँचने आदि का सान्त्वना पूर्ण कथन—

विलपन्तीं तथा तां तु कौसल्यां प्रमदोत्तमाम् ।
इदं धर्मे स्थिता धर्म्यं सुमित्रा वाक्यमब्रवीत् ॥ ४४, १ ॥

"तवार्ये सद्गुणैर्युक्तः स पुत्रः पुरुषोत्तमः ।
किं ते विलपितेनैवं कृपणं रुदितेन वा ॥ ४४, २ ॥

यस्तवार्ये गतः पुत्रस्त्यक्त्वा राज्यं महाबलः ।
साधुकुर्वन् महात्मानं पितरं सत्यवादिनम् ॥ ४४, ३ ॥

शिष्टैराचरिते सम्यक्शश्वत्प्रेत्यफलोदयः ।
रामो धर्मे स्थितः श्रेष्ठो न स शोच्यः कदाचनः ॥ ४४, ४ ॥

वर्तते चोत्तमां वृत्तिं लक्ष्मणोऽस्मिन् सदानघः ।
दयावान् सर्वभूतेषु लाभस्तस्य महात्मनः ॥ ४४, ५ ॥

अरण्यवासे यद्:दुखं जानन्त्येव सुखोचिता ।
अनुगच्छति वैदेही धर्मात्मानं तवात्मजम् ॥ ४४, ६ ॥

कीर्तिभूतां पताकां यो लोके भ्रमयति प्रभुः ।
धर्मः सत्यव्रतपरः किं न प्राप्तस्तवात्मजः ॥ ४४, ७ ॥

शिवः सर्वेषु कालेषु काननेभ्यो विनिःसृतः ।
राघवं युक्तशीतोष्णः सेविष्यति सुखोऽनिलः ॥ ४४, ९ ॥

या श्रीः शौर्यं च रामस्य या च कल्याणसत्त्वता ।
निवृत्तारण्यवासः स क्षिप्रं राज्यमवाप्स्यति ॥ ४४, १४ ॥

सूर्यस्यापि भवेत् सूर्यो ह्यग्नेरग्निः प्रभोः प्रभुः ।
श्रियः श्रीश्च भवेदग्र्या कीर्त्याः कीर्तिः क्षमा क्षमा ॥४४, १५॥

दैवतं देवतानां च भूतानां भूतसत्तमः ।
तस्य के ह्यगुणा देवि वने वाप्यथवा पुरे ॥ ४४, १६ ॥

पृथिव्या सह वैदेह्या श्रिया च पुरुषर्षभः ॥ ४४, १७ ॥
क्षिप्रं तिसृभिरेताभिः सह रामोऽभिषेक्ष्यते ।
दुःखजं विसृजत्यश्रु निष्क्रामन्तमुतीक्ष्य यम् ॥ ४४, १८ ॥
अयोध्यायां जनः सर्वः शोकवेगसमाहतः ।
कुशचीरधरं वीरं गच्छन्तमपराजितम् ।
सीतेवानुगता लक्ष्मीस्तस्य किं नाम दुर्लभम् ॥ ४४, १९ ॥
धनुर्ग्रहवरो यस्य बाणखड्गास्त्रभृत् स्वयम् ।
लक्ष्मणो व्रजति ह्यग्रे तस्य किं नाम दुर्लभम् ॥ ४४, २० ॥
निवृत्तवनवासं तं द्रष्टासि पुनरागतम् ।
नहि शोकं च मोहं च देवि सत्यं ब्रवीमि ते ॥ ४४, २१ ॥
नार्हा त्वं शोचितुं देवि यस्यास्ते राघवः सुतः ।
नहि रामात् परो लोके विद्यते सत्पथे स्थितः ॥ ४४, २६ ॥

इतना समझा कर सुमित्रा चुप हो गई--

आश्वासयन्ती विविधैश्चवाक्यैर्वाक्योपचारे कुशलानवद्या ।
रामस्य तां मातरमेवमुक्त्वा देवी सुमित्रा विरराम रामा ॥ ४४, ३० ॥

सुमित्रा की सान्त्वना से कौशल्या को बड़ी शान्ति मिली--

निशम्य तल्लक्ष्मणमातृवाक्यं रामस्य मातुर्नरदेवपत्न्याः ।
सद्यः शरीरे विननाश शोकः शरद्गतोमेघ इवाल्पतोयः ॥ ४४, ३१ ॥

उधर श्रीराम ने साथ गये हुए पुरवासियों को लौट जाने का अनुरोध किया और कहा कि यही स्नेह भरत के प्रति वरतने हुए मेरे वनवास से पूज्य पिता जी को जैसे क्लेश न पहुँचे वैसे करने को कहा--

निवर्तितेऽतीव बलात् सुहृद्धर्मेण राजनि ।
नैव ते संन्यवर्तन्त रामस्यानुगतारथम् ॥ ४५, २ ॥

स याच्यमानः काकुत्स्थस्ताभिः प्रकृतिभिस्तदा ।
कुर्वाणः पितरं सत्यं वनमेवान्वपद्यत ॥ ४४, ४ ॥

अवेक्षमाणः सस्नेहं चक्षुषा प्रपिबन्निव ।
उवाच रामः सस्नेहं ताः प्रजाः स्वाः प्रजा इव ॥ ४४, ५ ॥

या प्रीतिर्बहुमानश्च मय्ययोध्यानिवासिनः ।
मत्प्रियार्थं विशेषेण भरते सा विधीयताम् ॥ ४४, ६ ॥

स हि कल्याणचारित्रः कैकेय्यानन्दवर्धनः ।
करिष्यति यथावद् वः प्रियाणि च हितानि च ॥ ४४, ७ ॥

ज्ञानवृद्धो वयो बालो मृदुवीर्यगुणान्वितः ।
अनुरूपः स वो भर्ता भविष्यति भयापहः ॥ ४४, ८ ॥

स हि राजगुणैर्युक्तो युवराजः समीक्षितः ।
अपि चापि मया शिष्टैः कार्यं वो भर्तृशासनम् ॥ ४४, ९ ॥

न संतप्येद् यथा चासौ वनवासगते मयि ।
महाराजस्तथा कार्यो मम प्रियचिकीर्षया ॥ ४४, १० ॥

पैदल चलकर वन जाने से रोकते हुए विलपते देख श्रीराम स्वयं रथ से उतर कर उनके साथ ही चलने में छोटापन नहीं समझा--

ते द्विजास्त्रिविधं वृद्धा ज्ञानेन वयसौजसा ।
वयः प्रकम्पशिरसो दूरादूचुरिदं वचः ॥ ४५, १३ ॥

वहन्तो जवना रामं भो भो जात्यास्तुरंगमाः ।
निवर्तध्वं न गन्तव्यं हिता भवति भर्तरि" ॥ ४५, १४ ॥

एवमार्तप्रलापांस्तान् वृद्धान् प्रलपतो द्विजान् ।
अवेक्ष्य सहसा रामो रथादवततार ह ॥ ४५, १७ ॥

द्विजातीन् हि पदातींस्तान् रामश्चारित्रवत्सलः ।
न शशाक घृणाचक्षुः परिमोक्तुं रथेन सः ॥ ४५, १९ ॥

जाते हुए ही श्रीराम को देखकर द्विजातियों ने चलते चलते तमसा नदीतक पहुँच उन्हें लौट जाने का आग्रह किया—

गच्छन्तमेव ते दृष्ट्वा रामं सम्भ्रान्तमानसाः ।
ऊचुः परमसंतप्ता रामं वाक्यमिदं द्विजाः ॥ ४५, २० ॥

"अनवाप्तातपत्रस्य रश्मिसंतापितस्य ते ।
एभिश्छायां करिष्यामः स्वैश्छत्रैर्वाजपेयकैः ॥ ४५, २३ ॥

या हि नः सततं बुद्धिर्वेदमन्त्रानुसारिणी ।
त्वत्कृते सा कृता वत्स वनवासानुसारिणी ॥ ४५, २४ ॥

हृदयेष्ववतिष्ठन्ते वेदा ये नः परं धनम् ।
वत्स्यन्त्यपि गृहेष्वेव दाराश्चारित्ररक्षिताः ॥ ४५, २५ ॥

पुनर्न निश्चयः कार्यस्त्वद्गतौ सुकृता मतिः ।
त्वयि धर्मव्यपेक्षे तु किं स्याद् धर्मं पथे स्थितम् ॥ ४५, २६ ॥

याचितो नो निवर्तस्व हंसशुक्लशिरोरुहैः ।
शिरोभिर्निभृताचार महीपतनपांसुलैः ॥ ४५, २७ ॥

बहूनां वितता यज्ञा द्विजानां य इहागताः ।
तेषां समाप्तिरायत्ता तव वत्स निवर्तने ॥ ४५, २८ ॥

भक्तिमन्तीह भूतानि जङ्गमाजङ्गमानि च ।
याचमानेषु तेषु त्वं भक्तिं भक्तेषु दर्शय" ॥ ४५, २९ ॥

एवं विक्रोशतां तेषां द्विजातीनां निवर्तने ।
ददृशे तमसा तत्र वारयन्तीव राघवम् ॥ ४५, ३२ ॥

इस प्रकार वहाँ पहुँच कर सुमन्त्र ने रथ से घोड़े खोले और उनकी थकावट दूर की—

ततः सुमन्त्रोऽपि रथाद्विमुच्य श्रान्तान् हयान् सम्परिवर्त्य शीघ्रम् ।
पीतोदकांस्तोयपरिप्लुताङ्गानचारयद् वै तमसाविदूरे ॥ ४५, ३३ ॥

तमसा तीर पर प्रथम रात बिताई, रात में ही भाई लक्ष्मण से सलाह कर पुरवासियों को वहाँ छोड़कर आगे बढ़ चलने का विचार किया क्योंकि पुरवासी स्वेच्छा से उनका साथ छोड़ने वाले तो थे नहीं—

ततस्तु तमसातीरं रम्यमाश्रित्य राघवः।
सीतामुद्दिश्य सौमित्रिमिदं वचनमब्रवीत्॥ ४६, १॥
इयमद्य निशापूर्वा सौमित्रे प्रहिता वनम्।
वनवासस्य भद्रं ते न चोत्कण्ठितुमर्हसि॥ ४६, २॥
पश्य शून्यान्यरण्यानि रुदन्तीव समन्ततः।
यथा विलयमायद्भिर्निलीनानि मृगद्विजैः॥ ४६, ३॥
अद्यायोध्या तु नगरी राजधानी पितुर्मम।
सस्त्रीपुंसा गतानस्मान्शोचिष्यति न संशयः॥ ४६, ४॥
अस्मद्व्यपेक्षान् सौमित्रे निर्व्यपेक्षान् गृहेष्वपि।
वृक्षमूलेषु संसक्तान् पश्य लक्ष्मण साम्प्रतम्॥ ४६, १९॥
यथैते नियमं पौराः कुर्वन्त्यस्मन्निवर्तने।
अपि प्राणान् न्यसिष्यन्ति न तु त्यक्ष्यन्ति निश्चयम्॥ ४६, २०॥
यावदेव तु संसुप्तास्तावदेव वयं लघु।
रथमारुह्य गच्छामः पन्थानमकुतोभयम्॥ ४६, २१॥
पौरा ह्यात्मकृताद् दुःखाद् विप्रमोच्या नृपात्मजैः।
ननु खल्वात्मना योज्या दुःखेन पुरवासिनः॥ ४६, २३॥

श्रीराम ने सुमन्त्र को बुलाकर कहा, "सारथे, तुम शीघ्र रथ को तैयार करो हम पुरवासियों को सोते छोड़ कर निकल जाना चाहते हैं। सुमन्त्र ने वैसा ही आज्ञा पालन किया—

अथ रामोऽब्रवीत् सूतं शीघ्रं संयुज्यतां रथः।
गमिष्यामि ततोऽरण्यं गच्छ शीघ्रमितः प्रभो॥ ४६, २५॥
रामस्य तु वचः श्रुत्वा तथा चक्रे च सारथिः।
प्रत्यागम्य च रामस्य स्यन्दनं प्रत्यवेदयत्॥ ४६, ३२॥
ततः समास्थाय रथं महारथः ससारथिर्दाशरथिर्वनं ययौ।
उदङ्मुखं तं तु रथं चकार प्रयाणमाङ्गल्यनिमित्तदर्शनात्॥ ४६, ३४॥

प्रभात में जागने पर श्रीरामादि को वहां नहीं देखने पर पुरवासी जन ढाढ़

मार कर विलाप करने लगे और निराश हो घर को लौट गये। अपने को उन्होंने खूब कोसा—

प्रभातायां तु शर्वर्यां पौरास्ते राघवं विना।
शोकोपहतनिश्चेष्टा बभूवुर्हतचेतसः॥ ४७, १॥

शोकजाश्रुपरिद्यूना वीक्षमाणास्ततस्ततः।
आलोकमपि रामस्य न पश्यन्ति स्म दुःखिताः॥ ४७, २॥

ते विषादार्तवदना रहितास्तेन धीमता।
कृपणाः करुणा वाचो वदन्ति स्म मनीषिणः॥ ४७, ३॥

"धिगस्तु खलु निद्रां तां ययापहतचेतसः।
नाद्य पश्यामहे रामं पृथूरस्कं महाभुजम्॥ ४७, ४॥

इहैव निधनं याम महाप्रस्थानमेव वा।
रामेण रहितानां नो किमर्थं जीवितं हितम्॥ ४७, ७॥

निर्यातस्तेन वीरेण सह नित्यं महात्मना।
विहीनास्तेन च पुनः कथं द्रक्ष्याम तां पुरीम्॥ ४७, ११॥

तदा यथागतेनैव मार्गेण क्लान्तचेतसः।
अयोध्यामगमन् सर्वे पुरीं व्यथितसज्जनाम्॥ ४७, १५॥

ते तानि वेश्मानि महाधनानि दुःखेन दुःखोपहता विशन्तः।
नैव प्रजग्मुः स्वजनं परं वा निरीक्ष्यमाणाः प्रविनष्टहर्षाः॥ ४७, १६॥

श्रीरामवियोग में नागरिकनारियों का करुणविलाप एवं राम के बिना लौटने के कारण उन की भर्त्सना—

स्वं स्वं निलयमागम्य पुत्रदारैः समावृताः।
अश्रूणि मुमुचुः सर्वे बाष्पेण पिहिताननाः॥ ४८, २॥

नष्टं दृष्ट्वा नाभ्यनन्दन् विपुलं वा धनागमम्।
पुत्रं प्रथमजं लब्ध्वा जननी नाभ्यनन्दत॥ ४८, ५॥

गृहे गृहे रुदत्यश्च भर्तारं गृहमागतम्।
व्यगर्हयन्त दुःखार्ता वाग्भिस्तोत्त्रैरिव द्विपान्॥ ४८, ६॥

"किं नु तेषां गृहे कार्यं किं दारैः किं धनेन वा।
पुत्रैर्वापि सुखैर्वापि ये न पश्यन्ति राघवम्॥ ४८, ७॥

एकः सत्पुरुषो लोके लक्ष्मणः सह सीतया।
योऽनुगच्छति काकुत्स्थं रामं परिचरन् वने॥ ४८, ८॥

स्त्रियों ने पुरुषों से कहा, "लौट चलो, जहाँ राम हैं वहाँ कोई भय नहीं हैं। हम नारियाँ सीता की सवा करेंगी और तुम लोग राम को सेवा करना—

पादपाः पर्वताग्रेषु रमयिष्यन्ति राघवम्।
यत्र रामो भयं नात्र नास्ति तत्र पराभवः॥ ४८, १५॥

वयं परिचरिष्यामः सीतां यूयं च राघवम्।
इति पौरस्त्रियोभर्तॄन् दुःखार्तास्तत्तदब्रुवन्॥ ४८, १८॥

कैकेय्या यदि चेद् राज्यं स्यादधर्म्यमनाथवत्।
न हि नो जीवितेनाथ कुतः पुत्रैः कुतो धनैः॥ ४८, २१॥

मिथ्याप्रव्राजितो रामः सभार्यः सहलक्ष्मणः।
भरते संनिबद्धाः स्म सौनिके पशवो यथा॥ ४८, ५०॥

इस तरह विलाप करते हुए रात आ गई—

इत्येवं विलपन्तीनां स्त्रीणां वेश्मसु राघवम्।
जगामास्तं दिनकरं रजनी चाभ्यवर्तत॥ ४८, ३३॥

इधर रथ द्वारा श्रीरामादि का शृङ्गवेरपुर पहुँचना और यह सुन कर निषाद राज का वहाँ मन्त्रिबन्धुओं के साथ उपस्थित होना—

अविदूरादयं नद्या बहुपुष्पप्रवालवान्।
सुमहानिङ्गुदी वृक्षो वसामोऽत्रैव सारथे॥ ५०, २८॥

रामोऽभिप्राय तं रम्यं वृक्षमिक्ष्वाकुनन्दनः।
रथादवरत् तस्मात् सभार्यः सहलक्ष्मणः॥ ५०, ३१॥

तत्र राजा गुहोनाम रामस्यात्मसमः सखा।
निषादजात्यो बलवान् स्थपतिश्चेतिविश्रुतः॥ ५०,३३॥

स श्रुत्वा पुरुषव्याघ्रं रामं विषयमागतम्।
वृद्धैः परिवृतोऽमात्यैर्ज्ञातिभिश्चाप्युपागतः॥ ५०, ३४॥

निषादराज को दूर से उपस्थित देख दोनों भाई वहाँ गये—

ततो निषादाधिपतिं दृष्ट्वा दूरादुपस्थितम्।
सह सौमित्रिणा रामः समगच्छद् गुहेन सह॥ ५०, ३५॥

निषादराज ने श्रीराम का यथायोग्य स्वागत किया और भक्ष्य, भोज्यादि आवश्यकीय वस्तुएँ लाकर उपस्थित कीं—

स्वागतं ते महाबाहो तवेयमखिला मही।
वयं प्रेष्या भवान् भर्ता साधु राज्यं प्रसाधि नः॥ ५०, ३८॥

भक्ष्यं भोज्यं च पेयं च लेह्यं चैतदुपस्थितम्।
शयनानि च मुख्यानि वाजिनां खादनं च ते ॥ ५०, ३९ ॥

प्रसन्न चित्त श्रीराम ने गुह से हाथ मिलाया और कुशल समाचार पूछ कर घोड़े के लिये खाद्यमात्र लाने को कहा—

अचिताश्चैव हृष्टाश्च भवता सर्वदा वयम्।
पद्भ्यामभिगमाश्चैव स्नेहसंदर्शनेन च ॥ ५०, ४० ॥

भुजाभ्यां साधुवृत्ताभ्यां पीडयन् वाक्यमब्रवीत्।
"दिष्टया त्वां गुह पश्यामि ह्यरोगं सह बान्धवैः।

अपि ते कुशलं राष्ट्रे मित्रेषु च वनेषु च ॥ ५०, ४२ ॥

अश्वानां खादनेनाहमर्थी नान्येन केनचित्।
एतावतात्र भवता भविष्यामि सुपूजितः ॥ ५०, ४५ ॥

फिर रात आजाने पर श्रीराम और सीता सोने गये और लक्ष्मण उन दोनों के पैरों को धो एक पेड़ की जड़ के आश्रम में बैठकर जागते रहे। सारथी के साथ निषादराज भी लक्ष्मण से रात भर बातचीत करता रहा। इस प्रकार वह रात बीत गई—

तस्य भूमौ शयानस्य पादौ प्रक्षाल्य लक्ष्मणः।
सभार्यस्य ततोऽभ्यत्य तस्थौ वृक्षमुपाश्रितः ॥ ५०, ४९ ॥

गुहोऽपि सह सूतेन सौमित्रिमनुभाषयन्।
अन्वजाग्रत् ततो राममप्रमत्तो धनुर्धरः ॥ ५०, ५० ॥

तथा शयानस्य ततो यशस्विनो मनस्विनो दाशरथेर्महात्मनः।
अदृष्टदुःखस्य सुखोचितस्य सा तदा व्यतीता सुचिरेण शर्वरी ॥ ५०, ५१ ॥

प्रात होने पर लक्ष्मण ने भाई के आदेश से गुह को बुलाया।

प्रभातायां तु शर्वर्यां पृथुवक्षा महायशाः।
उवाच रामः सौमित्रिं लक्ष्मणं शुभलक्षणम् ॥ ५२, १ ॥

विज्ञाय रामस्य वचः सौमित्रिर्मित्रनन्दनः।
गुहमामन्त्र्य सूतं च सोऽतिष्ठद् भ्रातुरग्रतः ॥ ५२, ४ ॥

गुह ने अपने सचिवों को नाव प्रस्तुत करने को कहा—

अस्य वाहन संयुक्तां कर्णग्राहवतीं शुभाम्।
सुप्रतारां दृढां तीर्थे शीघ्रं नावमुपाहर ॥ ५० ६, ॥

सुदृढ़ नावों को घाट पर लगा कर अमात्यने गुह को सूचित किया—

तं निशम्य गुहादेशं गुहामात्यो गतो महान् ।
उपोह्य रुचिरां नावं गुहाय प्रत्यवेदयत् ॥ ५२, ७ ॥

तब गुह ने श्रीराम से निवेदन किया कि नाव ठीक है, उस पर चढ़ें और वे अपने सामान चढ़ा कर सीता के साथ दोनों भाई गंगा पार करने लगे—

तवामरसुतप्रख्य तर्तुं सागरगामिनीम् ।
नौरियं पुरुषव्याघ्र शीघ्रमारोह सुव्रत ॥ ५२, ९ ॥

ततः कलापान् संगृह्य खड्गौ बध्वा च धन्विनौ ।
जग्मतुर्येन तां गङ्गां सीतया सह राघवौ ॥ ५२, ११ ॥

सूत ने पूछा 'मैं क्या करूं?' श्रीराम का उत्तर—"सुमन्त्र ! पिताजी के पास लौट जाइये । यहाँ से हम पैदल महावन जायँगें—

राममेवं तु धर्मज्ञमुपागत्य विनीतवत् ।
"किमहं करवाणीति" सूतः प्राञ्जलिरब्रवीत् ॥ ५२, १२ ॥

ततोऽब्रवीद् दाशरथिः सुमंत्रं स्पृशन् करेणोत्तमदक्षिणेन ।
सुमन्त्र शीघ्रं पुनरेव याहि राज्ञः सकाशे भव चाप्रमत्तः ॥५२, १३॥

निवर्तस्वेत्युवाचैनमेतावद्धि कृतं मम ।
रथं विहाय पद्भ्यां तु गमिष्यामि महावनम् ॥ ५२, १४ ॥

इस पर सुमन्त्र ने श्रीराम से साथ ले चलने का आग्रह किया, पर श्रीराम की अस्वीकृति पर सुमन्त्र फूट फूट कर रोने लगे—

सह राघव वैदेह्या भ्रात्रा चैव वने वसन् ।
त्वं गतिं प्राप्स्यसे वीर त्रींल्लोकांस्तु जयन्निव ॥ ५२, १८ ॥

वयं खलु हता राम ये त्वया ह्युपवञ्चिताः ।
कैकेय्या वशमेष्यामः पापाया दुःखभागिनः ॥ ५२, १९ ॥

इति ब्रुवन्नात्मसमं सुमन्त्रः सारथिस्तदा ।
दृष्ट्वा दूरगतं रामं दुःखार्तो रुरुदे चिरम् ॥ ५२, २० ॥

श्रीराम ने सुमन्त्र को सस्नेह संदेश दिया कि पिताजी मेरे लिए शोच न करें ऐसा करने और उनपर अधिक ध्यान देने को कहा । साथ ही सभी माताओं से प्रणाम कह पिताजी से भरत को शीघ्र लिवाने कहना । भरत से भी कहना कि वह पिताजी के समान ही सभी माताओं के साथ व्यवहार करें—

इक्ष्वाकूणां त्वया तुल्यं सुहृदं नोपलक्षये ।
यथा दशरथो राजा मां न शोचेत् तथा कुरु ॥ ५२, २२ ॥

शोकोपहतचेताश्च वृद्धश्च जगतीपतिः ।
कामभारावसन्नश्च तस्मादेतद् ब्रवीमि ते ॥ ५२, २३ ॥

यद् यथा स महाराजो नालीकमधिगच्छति ।
न च ताम्यति शोकेन सुमन्त्र कुरु तत् तथा ॥ ५२, २६ ॥

अदृष्टदुःखं राजानं वृद्धमार्यं जितेन्द्रियम् ।
ब्रूयास्त्वमभिवाद्यैव मम हेतोरिदं वचः ॥ ५२, २७ ॥

न चाहमनुशोचामि लक्ष्मणो न च शोचति ।
अयोध्यायाश्च्युताश्चेति वने वत्स्यामहेति वा ॥ ५२, २८ ॥

चतुर्दशसु वर्षेषु निवृत्तेषु पुनः पुनः ।
लक्ष्मणं मां च सीतां च द्रक्ष्यसे शीघ्रमागतान् ॥ ५२, २९ ॥

एवमुक्त्वा तु राजानं मातरं च सुमन्त्र मे ।
अन्याश्च देवीः सहिता कैकेयीं च पुनः पुनः ॥ ५२, ३० ॥

आरोग्यं ब्रूहि कौसल्यामथ पादाभिवादनम् ।
सीताया मम चार्यस्य वचनाल्लक्ष्मणस्य च ॥ ५२, ३१ ॥

ब्रूयाश्चापि महाराजं भरतं क्षिप्रमानय' ।
आगतश्चापि भरतः स्थाप्यो नृपमते पदे ॥ ५२, ३२ ॥

भरतश्चापि वक्तव्यो यथा राजनि वर्तसे ।
तथा मातृषु वर्तेथाः सर्वास्वेवाविशेषतः ॥ ५२, ३३ ॥

सुमन्त्र ने कहा—'मैं किस प्रकार सूना रथ लेकर जाऊँगा, मुझे भी अपने साथ कर लें प्रभो !'

कथं हि त्वद् विहीनोऽहं प्रतियास्यामि तां पुरीम् ।
तव तात वियोगेन पुत्रशोकाकुलामिव ॥ ५२, ३९ ॥

सराममपि तावन्मे रथं दृष्ट्वा तदा जनः ।
विना रामं रथं दृष्ट्वा विदीर्येतापि सा पुरी ॥ ५२, ४० ॥

प्रसीदेच्छामि तेऽरण्ये भवितुं प्रत्यनन्तरः ।
प्रीत्याभिहितमिच्छामि भव मे प्रत्यनन्तरम् ॥ ५२, ५२ ॥

श्रीराम ने कहा—'मेरे ही हित के लिये जाइये सुमन्त्र, और जिन-जिन से जैसा कहा है, उन्हें सुना देना—

मम प्रियार्थं राज्ञश्च सुमन्त्र त्वं पुरीं व्रज ।
संदिष्टश्चापि यानार्थांस्तांस्तान् ब्रूयास्तथा तथा ॥ ५२, ६४ ॥

गुह द्वारा वटक्षीर मंगाकर श्रीराम ने अपनी और लक्ष्मण की जटा बनायीं—

जटाः कृत्वा गमिष्यामि न्यग्रोधक्षीरमानय ।
तत्क्षीरं राजपुत्राय गुहः क्षिप्रमुपाहरत् ॥ ५२, ६८ ॥
लक्ष्मणस्यात्मनश्चैव रामस्तेनाकरोज्जटाः ॥ ५२, ६९ ॥

तत्पश्चात् नौकारोहण किया और गंगा पार हुए—

स भ्रातुः शासनं श्रुत्वा सर्वमप्रतिकूलयन् ।
आरोप्य मैथिलीं पूर्वमारुरोहात्मवांस्ततः ॥ ५२, ७६ ॥
अथारुरोह तेजस्वी स्वयं लक्ष्मणपूर्वजः ।
ततो निषादाधिपतिर्गुहो ज्ञातीनचोदयत् ॥ ५२, ७७ ॥
तीरं तु समनुप्राप्य नावं हित्वा नरर्षभः ।
प्रतिष्ठत सह भ्रात्रा वैदेह्या च परंतपः ॥ ५२, ९३ ॥

तब एक दूसरे की रक्षा के लिये, आगे आगे लक्ष्मण बीच में सीता और पीछे पीछे श्रीराम चले, (विजनवन में)—

भव संरक्षणार्थाय सजने विजनेऽपि वा ।
अवश्यरक्षणं कार्यं मद्विधैर्विजने वने ॥ ५२, ९४ ॥
अग्रतो गच्छ सौमित्रे सीता त्वामनुगच्छतु ।
पृष्ठतोऽनुगमिष्यामि सीतां त्वां चानुपालयन् ॥ ५२, ९५ ॥
अन्योन्यस्य हि नो रक्षा कर्तव्या पुरुषर्षभ ॥ ५२, ९६ ॥

श्रीराम को वन में शोक संतप्त होते देखकर लक्ष्मण ने उन्हें रोका और कहा जल से बाहर निकाल देने पर जैसे मछलियाँ जी नहीं पातीं वैसे ही मैं और आपके बिना जी नहीं सकते—

नैतदौपयिकं राम यदिदं परितप्यसे ।
विषादयसि सीतां च मां चैव पुरुषर्षभ ॥ ५३, ३० ॥
न च सीतां त्वया हीनां न चाहमपि राघव ।
मुहूर्त्तमपि जीवावो जलान्मत्स्याविवोद्धृतौ ॥ ५३, ३१ ॥

लक्ष्मण की बात से श्रीराम को सान्त्वना मिली—

लक्ष्मणस्योत्तमपुष्कलं वचो निशम्य चैवं वनवासमादरात् ।
समस्ता विदधे परंतपः प्रपद्य धर्मं सुचिराय राघवः ॥ ५३, ३४ ॥

रात में वहाँ एक पेड़ के वे नीचे सोये। प्रभात में उस स्थान पर पहुँचे जहाँ गंगा, यमुना से मिलती है। अर्थात् तीर्थराज प्रयाग आ गये—

ते तु तस्मिन् महावृक्षे उषित्वा रजनीं शुभाम्।
विमलेऽभ्युदिते सूर्ये तस्माद् देशात् प्रतस्थिरे॥ ५४, १॥

यत्र भागीरथीं गङ्गां यमुनाभिप्रवर्तते।
जग्मुस्तं देशमुद्दिश्य विगाह्य सुमहद्वनम्॥ ५४, २॥

प्रयाग पहुँचकर उनका महात्मा भारद्वाज के आश्रम में प्रवेश और अभिवादनानन्तर श्रीराम ने अपने तीनों का उनसे परिचय देते हुए बन आने का कारण बताया—

स प्रविश्य महात्मानमृषिं शिष्यगणैर्वृतम्।
संशितव्रतमेकाग्रं तपसा लब्धचक्षुषम्॥ ५४, ११॥

हुताग्निहोत्रं दृष्ट्वैव महाभागः कृताञ्जलिः।
रामः सौमित्रिणा सार्धं सीतया चाभ्यवादयत्॥ ५४, १२॥

न्यवेदयत चात्मानं तस्मै लक्ष्मणपूर्वजः।
पुत्रौ दशरथस्यावां भगवन् रामलक्ष्मणौ॥ ५४, १३॥

भार्या ममेय कल्याणी वैदही जनकात्मजा।
मां चानुयाता विजनं तपोवनमनिन्दिता॥ ५४, १४॥

पित्रा प्रव्राज्यमानं मां सौमित्रिरनुजः प्रियः।
अयमन्वगमद् भ्राता वनमेव धृतव्रतः॥ ५४, १५॥

मुनि ने यथायोग्य स्वागत कर उन्हें अपने आश्रम में ही कालयापन करने की सलाह दी—

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राजपुत्रस्य धीमतः।
उपानयत धर्मात्मा गामर्घ्यमुदकं ततः॥ ५४, १७॥

मृगपक्षिभिरासीनो मुनिभिश्च समन्ततः।
राममागतमभ्यर्च्य स्वागतेनागतं मुनिः॥ ५४, १९॥

प्रतिगृह्य तु तामर्चामुपविष्टं स राघवम्।
भरद्वाजोऽब्रवीद् वाक्यं धर्मयुक्तमिदं वचः॥ ५४, २०॥

चिरस्य खलु काकुत्स्थ पश्याम्यहमुपागतम्।
श्रुतं तव मया चैव विवासनमकारणम्॥ ५४, २१॥

अवकाशो विविक्तोऽयं महानद्योः समागमे।
पुण्यश्च रमणीयश्च वसत्विह भवान् सुखम्॥ ५४, २२॥

इस पर श्रीराम ने उनसे विनीत भाव से कहा-"यहां जनपद से लोग आते जाते रहेंगे, अतः कोई ऐसा एकान्तस्थान बताया जाय जहाँ सीता का भी मन रम सके—

भगवन्नित आसन्नः पौरजानपदो जनः।
सुदर्शमिह मां प्रेक्ष्य मन्येऽहमिममाश्रमम् ॥ ५४, २४ ॥

आगमिष्यति वैदेहीं मां चापि प्रेक्षको जनः।
अनेन कारणेनाहमिह वासं न रोचये ॥ ५४, २५ ॥

एकान्ते पश्य भगवन्नाश्रमस्थानमुत्तमम्।
रमते यत्र वैदेही सुखार्हा जनकात्मजा ॥ ५४, २६ ॥

यहां से दश कोश पर महर्षियों से सेवित एक पर्वत है, वहाँ आप रहेंगे ऐसा भरद्वाज जी का उत्तर सुनकर रात में वहीं उन्होंने निवास किया—

दशक्रोश इतस्तात गिरिर्यस्मिन् निवत्स्यसि।
महर्षिसेवितः पुण्यः पर्वतः शुभदर्शनः ॥ ५४, २८ ॥

तस्य प्रयागे रामस्य तं महर्षिमुपेयुषः।
प्रपन्ना रजनी पुण्या चित्राः कथयतः कथाः ॥ ५४, ३४ ॥

प्रभात में उठ कर मुनि से चलने की आज्ञा माँगी—

शर्वरी भगवन्नद्य सत्यशील तवाश्रमे।
उषिताः स्मेह वसतिमनुजानातु नो भवान् ॥ ५४, ३७ ॥

मुनि ने उनका स्वस्त्ययन कर उन्हें विदा किया—

तेषां स्वस्त्ययनं चैव महर्षिः स चकार ह।
प्रस्थितान् प्रेक्ष्य तांश्चैव पिता पुत्रानिवौरसान् ॥ ५५, २ ॥

लकड़ी का बेड़ा बनाकर उन्होंने यमुना को पार किया और आगे चलकर श्यामवटवृक्ष के पास पहुँचे—

तौ काष्ठसंघाटमथो चक्रतुः सुमहाप्लवम् ॥ ५५, १३ ॥
चकार लक्ष्मणश्छित्त्वा सीतायाः सुखमासनम् ॥ ५५, १५ ॥

ते तीर्णाः प्लवमुत्सृज्य प्रस्थाय यमुनावनात्।
श्यामन्यग्रोधमासेदुः शीतलं हरितच्छदम् ॥ ५५, २३ ॥

जंगल में यमुना तट के पास ही रात बितायी—

विहृत्य ते बर्हिणपूगनादिते शुभे वने वारणवानरायुते।
समं नदीवप्रमुपेत्य सत्वरं निवासमाजग्मुरदीनदर्शनाः॥ ५५ ३३ ॥

चित्रकूट के लिये प्रस्थान--

तत उत्थाय ते सर्वे स्पृष्ट्वा नद्याः शिवं जलम् ।
पन्थानमृषिभिर्जुष्टं चित्रकूटस्य तं ययुः ॥ ५६, ४ ॥

अनेक प्रकार के पक्षियों एवं मूल फलों से युक्त सबेरे चित्रकूट के लिए प्रस्थान तथा सबों का चित्रकूट में पहुँचना—

तं तु पर्वतमासाद्य नानापक्षिगणायुतम् ।
बहुमूलफलं रम्यं सम्पन्नं सरसोदकम् ॥ ५६, १२ ॥

महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में प्रवेश कर तीनों ने ऋषि का अभिवादन किया और उन्होंने भी यथोचित उनका स्वागत किया—

इति सीता च रामश्च लक्ष्मणश्च कृताञ्जलिः ।
अभिगम्याश्रमं सर्वे वाल्मीकिमभिवादयन् ॥ ५६, १६ ॥
तान् महर्षिः प्रमुदितः पूजयामास धर्मवित् ।
आस्यतामिति चोवाच स्वागतं ते निवेद्य च ॥ ५६, १७ ॥

तब वहाँ श्रीराम ने लक्ष्मण को एक लकड़ी की कुटी बनाने को कहा—

ततोऽब्रवीन्महाबाहुर्लक्ष्मणं लक्ष्मणाग्रजः ।
संनिवेद्य यथान्यायमात्मानमृषये प्रभुः ॥ ५६, १८ ॥
"लक्ष्मणानय दारूणि दृढानि च वराणि च ।
कुरुष्वावसथं सौम्य वासे मेऽभिरतं मनः ॥ ५६, १९ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सौमित्रिर्विविधान् द्रुमान् ।
आजहार ततश्चक्रे पर्णशालामरिन्दमः ॥ ५६, २० ॥

पर्णशाला कुटी बन गई और श्रीराम नित्यकृत्य (सन्ध्या जप, देवपूजन बलिवैश्वदेव) कर मंत्रों द्वारा स्थान को रहने योग्य बनाये—

रामः स्नात्वा तु नियतो गुणवाञ्जपकोविदः ।
संग्रहेणाकरोत् सर्वान् मन्त्रान् सत्रावसानिकान् ॥ ५६, २९ ॥
दृष्ट्वा देवगणान् सर्वान् विवेशावसथं शुचिः ।
बभूव च मनोह्लादो रामस्यामिततेजसः ॥ ५६, ३० ॥
वैश्वदेवबलिं कृत्वा रौद्रं वैष्णवमेव च ।
वास्तुसंशमनीयानि मङ्गलानि प्रवर्तयन् ॥ ५६, ३१ ॥

चित्रकूट के प्राकृतिक सौन्दर्य से श्रीराम की प्रसन्नता—

सुरम्यमासाद्य तु चित्रकूटं नदीं च तां माल्यवतीं सुतीर्थाम् ।

ननन्द हृष्टो मृगपक्षिजुष्टां जहौ च दुःखं पुरविप्रवासम् ॥ ५६, ३५ ॥

उधर सुमन्त्र ने श्रीराम से बिदा लेकर गुह स भी बिदा लिया और अयोध्या को प्रस्थान किया। वहाँ पहुँच कर उसे आनन्दरहित देखा--

अनुज्ञातः सुमन्त्रोऽथ योजयित्वा हयोत्तमान्।
अयोध्यामेव नगरीं प्रययौ गाढदुर्मनाः ॥ ५७, ३ ॥

ततः सायाह्नसमये द्वितीयेऽहनि सारथिः।
अयोध्यां समनुप्राप्य निरानन्दां ददर्श ह ॥ ५७, ५ ॥

निस्तब्ध, शोक से दग्ध अयोध्या को देख कर सुमन्त्र शोचने लगे—

स शून्यामिव निःशब्दां दृष्ट्वा परमदुर्मनाः।
सुमन्त्रश्चिन्तयामास शोकवेगसमाहतः ॥ ५७, ६ ॥

"कच्चिन्न सगजा साश्वा सजना सजनाधिपा।
रामसंतापदुःखेन दग्धा शोकाग्निना पुरी" ॥ ५७, ७ ॥

राजभवन में प्रवेश कर सुमन्त्र ने राजा को प्रणाम किया और संदेश सुनाया—

अभिगम्य तमासीनं राजानमभिवाद्य च।
सुमन्त्रो रामवचनं यथोक्तं प्रत्यवेदयत् ॥ ५७, २५ ॥

समाचार सुन कर राजा मूर्च्छित हो पृथिवी पर गिर पड़े—

स तूष्णीमेव तच्छ्रुत्वा राजा विद्रुतमानसः।
मूर्च्छितो न्यपतद् भूमौ रामशोकाभिपीडितः ॥ ५७, २६ ॥

कौसल्या ने सचेत होने पर उनसे कहा, 'देव ! जिस कैकेयी के डर से आप सूत से बातें भी नहीं कर रहे हैं, वह यहाँ नहीं है, आप खुल कर बातें करें'—

सुमित्रायास्तु सहिता कौसल्या पतितं पतिम्।
उत्थापयामास तदा वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ५७, २८ ॥

इमं तस्य महाभाग दूतं दुष्करकारिणः।
वनवासादनुप्राप्तं कस्मान्न प्रतिभाषसे ॥ ५७, २९ ॥

देव यस्या भयात् रामं नानुपृच्छसि सारथिम्।
नेह तिष्ठति कैकेयी विश्रब्धं प्रतिभाष्यताम्" ॥ ५७, ३१ ॥

राजा से ऐसा कह कर वह स्वयं पृथ्वी पर बेहोश हो गिर गई—

सा तथोक्त्वा महाराजं कौसल्या शोकलालसा।
धरण्यां निपपाताशु बाष्पविप्लुतभाषिणी ॥ ५७, ३२ ॥

फिर तो अन्तःपुर में क्रन्दन का कोलाहल हो गूँज उठा—

ततस्तमन्तःपुरनादमुत्थितं समीक्ष्य वृद्धास्तरुणाश्च मानवाः ।
स्त्रियश्च सर्वा रुरुदुः समन्ततः पुरं तदासीत् पुनरेव संकुलम् ॥ ५७, ३४ ॥

राजा के पूछने पर सुमन्त्र ने श्रीराम का पूरा संदेश सुनाना आरंभ किया:—

अब्रवीन्मे महाराज धर्ममेवानुपालयन् ।
अञ्जलिं राघवः कृत्वा शिरसाभिप्रणम्य च ॥ ५८, १४ ॥
'सूत ! मद्वचनात् तस्य तातस्य विदितात्मनः ।
शिरसा वन्दनीयस्य वन्द्यौ पादौ महात्मनः ॥ ५८, १५ ॥
माता च मम कौसल्या कुशलं चाभिवादनम् ॥ ५८, १७ ॥
धर्मनित्या यथाकालमग्न्यगारपरा भव ।
देवि देवस्य पादौ च देववत् परिपालय ॥ ५८, १८ ॥
भरतः कुशलं वाच्यो वाच्यो मद्वचनेन च ।
सर्वास्वेव यथान्यायं वृत्तिं वर्तस्व मातृषु ॥ ५८, २१ ॥
पितरं यौवराज्यस्थो राज्यस्थमनुपालय ॥ ५८, २२ ॥

महाराज दशरथ के प्रति लक्ष्मण की आक्रोश भरी उलाहना और पितृत्वादि सारा आप्त सम्बन्ध श्रीराम में ही निहित मानना, राजा दशरथ में नहीं—

असमीक्ष्य समारब्धं विरुद्धं बुद्धिलाघवम् ।
जनयिष्यति संक्रोशं राघवस्य विवासनम् ॥ ५८, ३० ॥
अहं तावन्महाराजे पितृत्वं नोपलक्षये ।
भ्राता भर्ता च बन्धुश्च पिता च मम राघवः ॥ ५८, ३१ ॥

श्रीराम और सीता की दशा का वर्णन—

तथैव रामोऽश्रुमुखः कृताञ्जलिः स्थितोऽब्रवील्लक्ष्मणबाहुपालितः ।
तथैव सीता रुदती तपस्विनी निरीक्षते राजरथं तथैव माम् ॥ ५८, ३७ ॥

सूत की बात सुनकर राजा का अपने पूर्व अप-कृत्यों पर घोर पश्चात्ताप—

सूतस्य वचनं श्रुत्वा वाचा परमदीनया ।
बाष्पोपहतया सूतमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ५९, १७ ॥
कैकेय्या विनियुक्तेन पापाभिजनभावया ।
मया न मन्त्रकुशलैर्वृद्धैः सह समर्थितम् ॥ ५९, १८ ॥

न सुहृद्भिर्न चामात्यैर्मन्त्रयित्वा सनैगमैः।
मयायमर्थः सम्मोहात् स्त्रीहेतोः सहसा कृतः॥ ५९, १९॥

राजा का सूत से निवेदन करना कि वह उन्हें शीघ्र श्रीराम के पास पहुँचा दे-

सूत यद्यस्ति ते किंचिन्मयापि सुकृतं कृतम्।
त्वं प्रापयाशु मां रामं प्राणाः संत्वरयन्ति माम्॥ ५९, २१॥

राजा का विलाप—

हा राम रामानुज हा हा वैदेहि तपस्विनि।
न मां जानीत दुःखेन म्रियमाणमनाथवत्॥ ५९, २७॥

आर्तस्वर में उन्होंने कौसल्या अपने से शोक को दुस्तर बताया—

यस्मिन् बत निमग्नोऽहं कौसल्ये राघवं विना।
दुस्तरो जीविता देवि मयायं शोकसागरः॥ ५९, ३२॥

विलाप करते हुए राजा का मूर्च्छित हो जाना और कौसल्या का भय द्विगुण बढ़ जाना—

इति विलपति पार्थिवे प्रणष्टे करुणतरं द्विगुणं च रामहेतोः।
वचनमनुनिशम्य तस्य देवि भयमगमत् पुनरेव राममाता॥ ५९, ३४॥

कौसल्या को दुःखमग्न देख सुमन्त्र ने उन्हें उन सबों के सकुशल रहने का आश्वासन दिया—

त्यज शोकं च मोहं च सम्भ्रमं दुःखजं तथा।
व्यवधूय च संतापं वने वत्स्यति राघवः॥ ६०, ५॥

विजनेऽपि वने सीता वासं प्राप्य गृहेष्विव।
विस्रम्भं लभतेऽभीता रामे विन्यस्तमानसा॥ ६०, ७॥

राम वा लक्ष्मणं वापि दृष्ट्वा जानाति जानकी।
अयोध्याक्रोशमात्रे तु विहारमिव साश्रिता॥ ६०, ११॥

अलक्तरसरक्ताभावलक्तरसवर्जितौ।
अद्यापि चरणौ तस्याः पद्मकोशसमप्रभौ॥ ६०, १८॥

विधूय शोकं परिहृष्टमानसा महर्षियाते पथि सुव्यवस्थिताः।
वने रता वन्यफलाशनाः पितुः शुभां प्रतिज्ञां प्रतिपालयन्ति ते॥ ६०, २२॥

शोकाभिभूत होने के कारण कौसल्या ने रोती हुई, राजा से लम्बा उपालम्भन सुनाया—

यद्यपि त्रिषु लोकेषु प्रथितं ते महद्यशः।
सानुक्रोशो वदान्यश्च प्रियवादी च राघवः॥ ६१, २॥
कथं नरवरश्रेष्ठ पुत्रौ तौ सह सीतया।
दुःखितौ सुखसंवृद्धौ वने दुःखं सहिष्यतः॥ ६१, ३॥
सा नूनं तरुणी श्यामा सुकुमारी सुखोचिता।
कथमुष्णं च शीतं च मैथिली विसहिष्यते॥ ६१, ४॥
वज्रसारमयं नूनं हृदयं मे न संशयः।
अपश्यन्त्या न तं यद् वै फलतीदं सहस्रधा॥ ६१, ९॥
भोजयन्ति किल श्राद्धे केचित् स्वानेव बान्धवान्।
ततः पश्चात् समीक्षन्ते कृतकार्या द्विजोत्तमान्॥ ६१, १२॥
तत्र ते गुणवन्तश्च विद्वांसश्च द्विजातयः।
न पश्चात् तेऽभिमन्यन्ते सुधामपि सुरोपमाः॥ ६१, १३॥
ब्राह्मणेष्वपि वृत्तेषु भुक्तशेषं द्विजोत्तमाः।
नाभ्युपेतुमलं प्राज्ञाः श्रृङ्गच्छेदमिवर्षभाः॥ ६१, १४॥
एवं कनीयसा भ्रात्रा भुक्तं राज्यं विशाम्पते।
भ्राता ज्येष्ठो वरिष्ठश्च किमर्थं नावमन्यते॥ ६१, १५॥
न परेणाहृतं भक्ष्यं व्याघ्रः खादितुमिच्छति।
एवमेव नरव्याघ्रः परलीढं न मंस्यते॥ ६१, १६॥
हविराज्यं पुरोडाशः कुशा यूपाश्च खादिराः।
नैतानि यातयामानि कुर्वन्ति पुनरध्वरे॥ ६१, १७॥
नैतस्य सहिता लोका भयं कुर्युर्महामृधे।
अधर्मं त्विह धर्मात्मा लोकं धर्मेण योजयेत्॥ ६१, २०॥
स तादृशः सिंहबलो वृषभाक्षो नरर्षभः।
स्वयमेव हतः पित्रा जलजेनात्मजो यथा॥ ६१, २२॥
द्विजातिचरितो धर्मः शास्त्रे दृष्टः सनातनः।
यदि ते धर्मनिरते त्वया पुत्रे विवासिते॥ ६१, २३॥
गतिरेका पतिर्नार्या द्वितीया गतिरात्मजः।
तृतीया ज्ञातयो राजंश्चतुर्थी नैव विद्यते॥ ६१, २४॥
तत्र त्वं मम नैवासि रामश्च वनमाहितः।
न वनं गन्तुमिच्छामि सर्वथा हा हता त्वया॥ ६१, २५॥

हतं त्वया राष्ट्रमिदं सराज्यं हताः स्म सर्वाः सह मन्त्रिभिश्च।
हता सपुत्रास्मि हताश्च पौराः सुतश्च भार्या च तव प्रहृष्टौ ॥ १, २६ ॥

उपालम्भन सुनकर राजा मूच्छित हो गये, फिर अपने दुष्कर्मों को याद करने लगे—

इमां गिरं दारुणशब्दसंहितां निशम्य रामेति मुमोह दुःखितः।
ततः सशोकं प्रविवेश पार्थिवः स्वदुष्कृतं चापि पुनस्तथास्मरन्॥६१,२७॥

दयाशीला कौसल्या को प्रसन्न करने के लिये राजा ने उससे हाथ जोड़ कर माँफी माँगी—

दह्यमानस्तु शोकाभ्यां कौसल्यामाह दुःखितः।
वेपमानोऽञ्जलिं कृत्वा प्रसादार्थमवाङ्मुखः ॥ ६२, ६ ॥

प्रसादये त्वां कौसल्ये रचितोऽयं मयाञ्जलिः।
वत्सला चानृशंसा च त्वं हि नित्यं परेष्वपि ॥ ६२, ७ ॥

भर्ता तु खलु नारीणां गुणवान् निर्गुणोऽपि वा।
धर्मं विमृशमानानां प्रत्यक्षं देवि दैवतम् ॥ ६२, ८ ॥

सा त्वं धर्मपरा नित्यं दृष्टलोकपरावरा।
नार्हसे विप्रियं वक्तु दुःखितापि सुदुःखितम् ॥ ६२, ९ ॥

राजा की बात सुनकर कौसल्या को अपने कर्तव्य का ज्ञान हो आया और उनसे क्षमा माँगी। उसने स्वीकार किया कि पुत्रशोक के कारण उसे कर्तव्य का ज्ञान लोप हो गया था—

तद्वाक्यं करुणं राज्ञः श्रुत्वा दीनस्य भाषितम्।
कौसल्या व्यसृजद् बाष्पं प्रणालीव नवोदकम् ॥ ६२, १०॥

सा मूर्ध्नि बद्ध्वा रुदती राज्ञः पद्ममिवाञ्जलिम्।
सम्भ्रमादब्रवीत् त्रस्ता त्वरमाणाक्षरं वचः ॥ ६२, ११ ॥

प्रसीद शिरसा याचे भूमौ निपतितास्मि ते।
याचितास्मि हता देव क्षन्तव्याहं नहि त्वया ॥ ६२, १२ ॥

नैषा हि सा स्त्री भवति श्लाघनीयेन धीमता।
उभयोर्लोकयोर्लोके पत्या या सम्प्रसाद्यते ॥ ६२, १३ ॥

शोको नाशयते धैर्यं शोको नाशयते श्रुतम्।
शोको नाशयते सर्वं नास्ति शोकसमो रिपुः ॥ ६२, १५ ॥

शक्यमापतितः सोढुं प्रहारो रिपुहस्ततः।
सोढुमापतितः शोकः सुसूक्ष्मोऽपि न शक्यते ॥ ६२, १६ ॥

कौसल्या की बात से राजा का संतोष हुआ—

अथ प्रह्लादितो वाक्यैर्देव्या कौसल्यया नृपः।
शोकेन च समाक्रान्तो निद्रया वशमेयिवान्॥ ६२, २०॥

शोकार्ता कौसल्या से शोकार्त राजा ने अपने बीते दुष्कर्म का फल ही, इस घटना का स्रोत बताया—

स राजा पुत्रशोकार्तः स्मृत्वा दुष्कृतमात्मनः।
कौसल्यां पुत्रशोकार्तामिदं वचनमब्रवीत्॥ ६३, ५॥

यदाचरति कल्याणि शुभं वा यदि वाशुभम्।
तदेव लभते भद्रे कर्ता कर्मजमात्मनः॥ ६३, ६॥

गुरुलाघवमर्थानामारम्भे कर्मणां फलम्।
दोषं वा यो न जानाति स बाल इति होच्यते॥ ६३, ७॥

कश्चिदाम्रवनं छित्त्वा पलाशांश्च निषिञ्चति।
पुष्पं दृष्ट्वा फले गृध्नुः स शोचति फलागमे॥ ६३, ८॥

अविज्ञाय फलं यो हि कर्म त्वेवानुधावति।
स शोचेत् फलवेलायां यथा किंशुकसेचकः॥ ६३, ९॥

सोऽहमाम्रवनं छित्त्वा पलाशांश्च न्यषेचयम्।
रामं फलागमे त्यक्त्वा पश्चाच्छोचामि दुर्मतिः॥ ६३, १०॥

श्रवणकुमार के माता-पिता के श्राप का ही फल घटित हुआ है—

त्वयापि च यदज्ञानान्निहतो मे स बालकः।
तेन त्वामपि शप्स्येऽहं सुदुःखमतिदारुणम्॥ ६४, ५३॥

पुत्रव्यसनजं दुःखं यदेतन्मम साम्प्रतम्।
एवं त्वं पुत्रशोकेन राजन् कालं गमिष्यसि॥ ६४, ५४॥

त्वामप्येतादृशो भाव क्षिप्रमेव गमिष्यति।
जीवितान्तकरो घोरो दातारमिव दक्षिणा॥ ६४, ५६॥

एवं शापं मयि न्यस्य विलप्य करुणं बहु।
चितामारोप्य देहं तन्मिथुनं स्वर्गमभ्ययात्॥ ६४, ५७॥

कौसल्या से राजा ने कहा, 'मैं ने वैसा नहीं किया जैसा मुझे करना चाहिये था और श्रीराम ने जैसा किया वह उसी से हो सकता था'—

न तन्मे सदृशं देवि यन्मया राघवे कृतम्।
सदृशं तत्तु तस्यैव यदनेन कृतं मयि॥ ६४, ६३॥

दुर्वृत्तमपि कः पुत्रं त्यजेद् भुवि विचक्षणः।
कश्च प्रव्राज्यमानो वा नासूयेत् पितरं सुतः॥ ६४, ६४॥

फिर शोकाभिभूत होने के कारण कौसल्या से यों कहा—

"चक्षुषा त्वां न पश्यामि स्मृतिर्मम विलुप्यते।
दूता वैवस्वतस्यैते कौसल्ये त्वरयन्ति माम्॥ ६४, ६५॥

हा राघव महाबाहो हा ममायासनाशन।
हा पितृप्रिय मे नाथ हाद्य क्वासि गतः सुत॥ ६४, ७५॥

हा कौसल्ये न पश्यामि हा सुमित्रे तपस्विनि।
हा नृशंसे ममामित्रे कैकेयि कुलपांसिनि"॥ ६४, ७६॥

इस प्रकार शोचते हुए कौसल्या तथा सुमित्रा के निकट ही राजा ने प्राण त्यागे (राम राम कहते हुए)—

इति मातुश्च रामस्य सुमित्रायाश्च संनिधौ।
राजा दशरथः शोचञ्जीवितान्तमुपागमत्॥ ६४, ७७॥

तथा तु दीनः कथयन् नराधिपः प्रियस्य पुत्रस्य विवासनातुरः।
गतोऽर्धरात्रे भृशदुःखपीडितस्तदा जहौ प्राणमुदारदर्शनः॥६४, ७८॥

रानियों का विलाप—

अतीतमाज्ञाय तु पार्थिवर्षभं यशस्विनं तं परिवार्य पत्नयः।
भृशं रुदत्यः करुणं सुदुःखिताः प्रगृह्य बाहू व्यलपन्ननाथवत्॥ ६५,२९॥

'राजा की मृत्यु के कारण शून्य राज्यसिंहासन पर किसी इक्ष्वाककुलोद्भव व्यक्तिको बैठा दिया जाय' यह विचार मार्कण्डेयादि मुनियों का था, और उन्होंने वसिष्ठ जी की अनुमति माँगी—

इक्ष्वाकूणामिहाद्यैव कश्चिद् राजा विधीयताम्।
अराजके हि नो राष्ट्रं विनाशं समवाप्नुयात्॥ ६७, ८॥

नाराजके जनपते स्वकं भवति कस्यचित्।
मत्स्या इव जना नित्यं भक्षयन्ति परस्परम्॥ ६७, ३१॥

यथा दृष्टिः शरीरस्य नित्यमेव प्रवर्तते।
तथा नरेन्द्रो राष्ट्रस्य प्रभवः सत्यधर्मयोः॥ ६७, ३३॥

राजा सत्यं च धर्मश्च राजा कुलवतां कुलम्।
राजा माता पिता चैव राजा हितकरो नृणाम्॥ ६७, ३४॥

चूँकि भरत जी मनोनीत राज्याधिकारी थे इसलिये वसिष्ठ जीने ननिहाल से भरत, शत्रुघ्न को बुलवाने का आदेश दिया—

यदसौ मातुलकुले दत्तराज्यः परं सुखी।
भरतो वसति भ्रात्रा शत्रुघ्नेन मुदान्वितः॥ ६८, २॥
तच्छीघ्रं जवना दूता गच्छन्तु त्वरितं हयैः।
आनेतुं भ्रातरौ वीरौ किं समीक्षामहे वयम्॥ ६८, ३॥

दूतों का भरत के ननिहाल पहुँचना—

भर्तुः प्रियार्थं कुलरक्षणार्थं भर्तुश्च वंशस्य परिग्रहार्थम्।
अहेडमानास्त्वरया स्म दूता रात्र्यां तु ते तत्पुरमेव याताः॥६८, २२॥

भरत को संवाद देना—

पुरोहितस्त्वां कुशलं प्राह सर्वे च मन्त्रिणः।
त्वरमाणश्च निर्याहि कृत्यमात्ययिकं त्वया॥ ७०, ३॥

भरत को नाना की आज्ञा माँगना—

राजन् पितुर्गमिष्यामि सकाशं दूतचोदितः।
पुनरप्यहमेष्यामि यदा मे त्वं स्मरिष्यसि॥ ७०, १५॥

भरत को नाना की आज्ञा मिलना—

गच्छ तातानुजाने त्वां कैकेयी सुप्रजास्त्वया।
मातरं कुशलं ब्रूयाः पितरं च परंतप॥ ७०, १७॥

भरत का अयोध्या पहुँचना, पहुँचने में सात रातें लगीं—

अयोध्यां मनुना राज्ञा निर्मितां स ददर्श ह।
तां पुरीं पुरुषव्याघ्रः सप्तरात्रोषितः पथि॥ ७१ १८॥

भरत ने अपने घर में प्रवेश कर अपनी माता के चरणों में प्रणाम किया—

स प्रविश्यैव धर्मात्मा स्वगृहं श्रीविवर्जितम्।
भरतः प्रेक्ष्य जग्राह जनन्याश्चरणौ शुभौ॥ ७२,३॥

पिता को न देख उनके विषय में पूछने पर कैकेयी ने भरत को उनकी मृत्यु का समाचार दिया—

या गतिः सर्वभूतानां तां गतिं ते पिता गतः।
राजा महात्मा तेजस्वी यायजूकः सतां गतिः॥ ७२, १५॥

पिता की मृत्यु समाचार से व्यथित भरत ने अपने बड़े भाई श्रीराम के विषय में पूछताछ की—

यो मे भ्राता पिता बन्धुर्यस्य दासोऽस्मि सम्मतः ।
तस्य मां शीघ्रमाख्याहि राममक्लिष्टकर्मणः ॥ ७२, ३२ ॥

पिता हि भवति ज्येष्ठो धर्ममार्यस्य जानतः ।
तस्य पादौ ग्रहीष्यामि स हीदानीं गतिर्मम ॥ ७२, ३३ ॥

क्व चेदानीं स धर्मात्मा कौसल्यानन्दवर्धनः ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया च समागतः ॥ ७२, ४० ॥

कैकेयी ने कहा, "श्रीराम तो सीता और लक्ष्मण के साथ चीरधारण कर दण्डक बन चले गये"—

स तु राजसुतः पुत्रः चीरवासा महावनम् ।
दण्डकान् सह वैदेह्या लक्ष्मणानुचरो गतः ॥ ७२, ४९ ॥

सारी बातें जान लेने पर महात्मा भरत ने अपनी माता कैकेयी को अनेकों प्रकार से भत्सना करते हुए कहा कि, तुम अग्नि में प्रवेश करके या गले में फाँसी लगाकर इस दुष्कर्म का प्रायश्चित करो—

किं नु कार्यं हतस्येह मम राज्येन शोचतः ।
विहीनस्याथ पित्रा च भ्रात्रा पितृसमेन च ॥ ७३, २ ॥

मृत्युमापादितो राजा त्वया मे पापदर्शिनि ।
सुखं परिहृतं मोहात् कुलेऽस्मिन् कुलपांसिनि ॥ ७३, ५ ॥

न मे विकाङ्क्षा जायेत त्यक्तुं त्वां पापनिश्चयाम् ।
यदि रामस्य नावेक्षा त्वयि स्यान्मातृवत् सदा ॥ ७३, १८ ॥

भ्रूणहत्यामसि प्राप्ता कुलस्यास्य विनाशनात् ।
कैकेयि नरकं गच्छ मा च तातसलोकताम् ॥ ७४, ४ ॥

मातृरूपे ममामित्रे नृशंसे राज्यकामुके ।
न तेऽहमभिभाष्योऽस्मि दुर्वृत्ते पतिघातिनि ॥ ७४, ७ ॥

अङ्गप्रत्यङ्गजः पुत्रो हृदयाच्चाभिजायते ।
तस्मात् प्रियतरो मातुः प्रिया एव तु बान्धवाः ॥ ७४, १४ ॥

सा त्वमग्निं प्रविश वा स्वयं वा विश दण्डकान् ।
रज्जुं बद्ध्वाथ वा कण्ठे नहि तेऽन्यत् परायणम् ॥ ७४, ३३ ॥

उपर्युक्त भर्त्सना करते हुए भरत जी का मूर्च्छित हो जाना—

इति नाग इवारण्ये तोमराङ्कुशतोदितः ।
पपात भुवि संक्रुद्धो निःश्वसन्निव पन्नगः ॥ ७४, ३५ ॥

संरक्तनेत्रः शिथिलाम्बरस्तथा विधूतसर्वाभरणः परंतपः ।
बभूव भूमौ पतितो नृपात्मजः शचीपतेः केतुरिवोत्सवक्षये ॥७४, ३६॥

भरत से मिलने पर कौसल्या ने दुःखित होकर कहा—"भरत धनधान्यपूर्ण अकण्टक राज्य तुम्हारी क्रूरकर्मा माँ के द्वारा तो तुम्हें मिल गया न ?"

इदं ते राज्यकामस्य राज्यं प्राप्तमकण्टकम् ।
सम्प्राप्तं बत कैकेय्या शीघ्रं क्रूरेण कर्मणा ॥ ७५, ११ ॥

प्रस्थाप्य चीरवसनं पुत्रं मे वनवासिनम् ।
कैकेयी कं गुणं तत्र पश्यति क्रूरदर्शिनी ॥ ७५, १२ ॥

इदं हि तव विस्तीर्णं धनधान्यसमाचितम् ।
हस्त्यश्वरथसम्पूर्णं राज्यं निर्यातितं तया ॥ ७५, १६ ॥

कौसल्या के परोक्ष व्यङ्ग्य से आहत हो उन्होंने शपथ खायी और अपने को निरपराध बताया—

आर्ये कस्मादजानन्तं गर्हसे मामकल्मषम् ।
विपुलां च मम प्रीतिं स्थिरां जानासि राघवे ॥ ७५, २० ॥

पायसं कृसरं छागं वृथा सोऽश्नातु निर्घृणः ।
गुरूंश्चाप्यवजानन्तु यस्यार्योऽनुमते गतः ॥ ७५, ३० ॥

माऽऽत्मनः संततिं द्राक्षीत् स्वेषु दारेषु दुःखितः ।
आयुः समग्रमप्राप्य यस्यार्योऽनुमते गतः ॥ ७५, ३६ ॥

उभे संध्ये शयानस्य यत् पापं परिकल्प्यते ।
तच्च पापं भवेत् तस्य यस्यार्योऽनुमते गतः ॥ ७५, ४४ ॥

यदग्निदायके पापं यत् पापं गुरुतल्पगे ।
मित्रद्रोहे च यत् पापं तत् पापं प्रतिपद्यताम् ॥ ७५, ४५ ॥

धर्मदारान् परित्यज्य परदारान् निषेवताम् ।
त्यक्तधर्मरतिर्मूढो यस्यार्योऽनुमते गतः ॥ ७५, ५५ ॥

एवमाश्वासयन्नेव दुःखार्तोऽनुपपात ह ।
विहीनां पतिपुत्राभ्यां कौसल्यां पार्थिवात्मजः ॥ ७५, ५९ ॥

फिर कौसल्या ने उन की सहृदयता और श्रीराम के प्रति अविरल प्रीति की प्रशंसा की—

दिष्ट्या न चलितो धर्मादात्मा ते सह लक्ष्मणः ।
वत्स सत्यप्रतिज्ञो हि सतां लोकानवाप्स्यसि ॥ ७५, ६२ ॥

इत्युक्त्वा चाङ्कमानीय भरतं भ्रातृवत्सलम् ।
परिष्वज्य महाबाहुं रुरोद भृशदुःखिता ॥ ७५, ६३ ॥

लालप्यमानस्य विचेतनस्य प्रणष्टबुद्धेः पतितस्य भूमौ ।
मुहुर्मुहुर्निःश्वसितस्य दीर्घं सा तस्य शोकेन जगाम रात्रिः ॥७५, ६५॥

वसिष्ठजी के आदेशानुसार राजा की श्राद्धक्रिया भरत ने सम्पन्न की—

वसिष्ठस्य वचः श्रुत्वा भरतो धरणीं गतः ।
प्रेतकृत्यानि सर्वाणि कारयामास धर्मवित् ॥ ७६, ३ ॥

ततो दशाहेऽतिगते कृतशौचो नृपात्मजः ।
द्वादशेऽहनि सम्प्राप्ते श्राद्धकर्माण्यकारयत् ॥ ७७, १ ॥

मुनि वसिष्ठ ने भरत को उपदेश दिया—

त्रयोदशोऽयं दिवसः पितुर्वृत्तस्य ते विभो ।
सावशेषास्थिनिचये किमिह त्वं विलम्बसे ॥ ७७, २२ ॥

त्रीणि द्वन्द्वानि भूतेषु प्रवृत्तान्यविशेषतः ।
तेषु चापरिहार्येषु नैवं भवितुमर्हसि ॥ ७७, २३ ॥

श्रीराम की वनगमनघटना को बलप्रयोग द्वारा लक्ष्मण क्यों नहीं बचाये—

गतिर्यः सर्वभूतानां दुःखे किं पुनरात्मनः ।
स रामः सत्त्वसम्पन्नः स्त्रिया प्रव्राजितो वनम् ॥ ७८, २ ॥

बलवान् वीर्यसम्पन्नो लक्ष्मणो नाम योऽप्यसौ ।
किं न मोचयते रामं कृत्वापि पितृनिग्रहम् ॥ ७८, ३ ॥

क्रोधाभिभूत शत्रुघ्न कुब्जा को देखकर उसे दण्ड देने लगे । कैकेयी ने छुड़ाना चाहा । शत्रुघ्न ने उन्हें भी डाँटा । तब वह डर कर भरत की शरण में गई—

स बली बलवत् क्रोधाद् गृहीत्वा पुरुषर्षभः ।
कैकेयीमभिनिर्भर्त्स्य बभाषे परुषं वचः ॥ ७८, १९ ॥

तैर्वाक्यैः परुषैर्दुःखैः कैकेयी भृशदुःखिता ।
शत्रुघ्नभयसंत्रस्ता पुत्रं शरणमागता ॥ ७८, २० ॥

दयालु भरत ने शत्रुघ्न से कहा, नारी अवध्या होती है। इसे मत मारो। मैं भी कैकेयी को मार डालना चाहता था, किन्तु श्रीराम मातृहन्ता समझ कर कभी भी मुझ से बातें नहीं करेंगे। कुब्जा के मारे जाने की बात जान कर भी वह कभी भी हम से नहीं बोलेंगे—

तं प्रेक्ष्य भरतः क्रुद्धं शत्रुघ्नमिदमब्रवीत्।
अवध्याः सर्वभूतानां प्रमदाः क्षम्यतामिति ॥ ७८, २१ ॥
हन्यामहमिमां पापां कैकेयीं दुष्टचारिणीम्।
यदि मां धार्मिको रामो नासूयेन्मातृघातकम् ॥ ७८, २२ ॥
इमामपि हतां कुब्जां यदि जानाति राघवः।
त्वां च मां चैव धर्मात्मा नाभिभाषिष्यते ध्रुवम् ॥ ७८,२३ ॥

शत्रुघ्नविक्षेपविमूढसंज्ञां समीक्ष्य कुब्जां भरतस्य माता।
शनैः समाश्वासयदार्तरूपां क्रौञ्चीं विलग्नामिव वीक्षमाणाम् ॥७८, २६॥

मन्त्रियों ने भरत से आग्रह किया कि वह अभिषिक्त होकर राज्य ग्रहण करें—

गतो दशरथः स्वर्गं यो नो गुरुतरो गुरुः।
रामं प्रव्राज्य वै ज्येष्ठं लक्ष्मणं च महाबलम् ॥ ७९, २ ॥
त्वमद्य भव नो राजा राजपुत्र महायशः।
संगत्या नापराध्नोति राज्यमेतदनायकम् ॥ ७९, ३ ॥
राज्यं गृहाण भरत पितृपैतामहं ध्रुवम्।
अभिषेचय चात्मानं पाहि चास्मान् नरर्षभ ॥ ७९, ५ ॥

राज लेना भरत ने अस्वीकार किया। "भरत ने अभिषेचनीय द्रव्यादि के साथ, सेना लेकर, बन जाने को उद्यत हुए और वहीं राज्य देकर राम का लौटा लाने का भी संकल्प किया"—

अभिषेचनिकं भाण्डं कृत्वा सर्वं प्रदक्षिणम्।
भरतस्तं जनं सर्वं प्रत्युवाच धृतव्रतः ॥ ७९, ६ ॥
ज्येष्ठस्य राजता नित्यमुचिता हि कुलस्य नः।
नैवं भवन्तो मां वक्तुमर्हन्ति कुशला जनाः ॥ ७९, ७ ॥
रामः पूर्वो हि नो भ्राता भविष्यति महीपतिः।
अहं त्वरण्ये वत्स्यामि वर्षाणि नव पञ्च च ॥ ७९, ८ ॥
युज्यतां महती सेना चतुरङ्गमहाबला।
आनयिष्याम्यहं ज्येष्ठं भ्रातरं राघवं वनात् ॥ ७९, ९ ॥